संत कबीर की विवेकधारा से अनुप्राणित

पारख प्रकाश

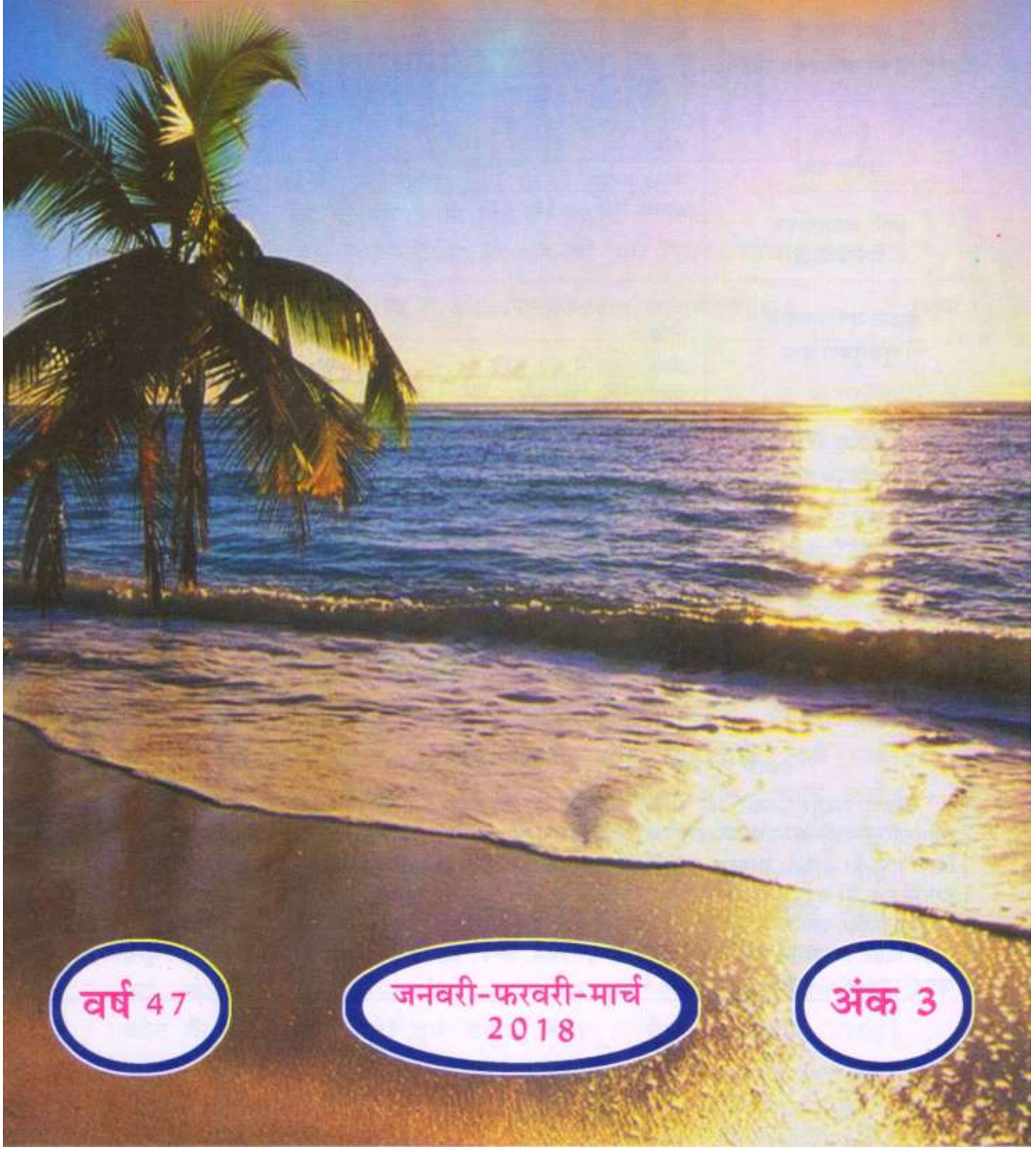

वर्ष 47

जनवरी-फरवरी-मार्च
2018

अंक 3

ज्ञान, भक्ति, वैराग्य, एकता तथा मानव-धर्म-प्रेरक हिन्दी पत्रिका

प्रवर्तक
सद्गुरु श्री रामसूरत साहेब
श्री कबीर मन्दिर, बड़हरा
पोस्ट—मद्दोबाजार
जिला—गोंडा, उ०प्र०

आदि संपादक
सद्गुरु श्री अभिलाष साहेब

संपादक
धर्मेन्द्र दास

आदि व्यवस्थापक
प्रेम प्रकाश

मुद्रक एवं प्रकाशक
गुरुभूषण दास

पारख प्रकाश इंटरनेट पर
www.kabirparakh.com

वार्षिक शुल्क—50.00
एक प्रति—13.00
आजीवन सदस्यता शुल्क
1250.00

विषय-सूची

कविता	लेखक	पृष्ठ
बिना देखे परतीत लाई		1
वृद्धावस्था	डॉ. अमृत सिंह	10
पारख सिद्धान्त	राधाकृष्ण कुशवाहा	16
मधुशाला	बरसाइत दास महंत	17

स्तंभ

पारख प्रकाश / 2 व्यवहार वीथी / 14 परमार्थ पथ / 23
बीजक चिंतन / 34

लेख

लोक जीवन में संत कबीर	श्री धर्मदास	6
समस्या और समाधान	विवेक दास	9
साधना पथ में सावधानी	भूपेन्द्र दास	17
हम ईश्वर के अधीन हैं या ईश्वर हमारे	विमलनाभ श्रीवास्तव	18
मोर बहुरिया को धनिया नाऊ	धर्मेन्द्र दास	19
संत वचनामृत	श्री कन्हैया सिंह बिशेन	27
ईश्वर और उसका स्वरूप		40

कहानी

भिखारिन	दीनेन्द्र दास	36

बीजक : पारख प्रबोधिनी व्याख्या

(प्रथम खण्ड : बीसवां संस्करण, द्वितीय खण्ड : अठारहवां संस्करण)

बीजक सद्गुरु कबीर की सर्वथा मौलिक एवं सर्वाधिक प्रामाणिक रचना है। मानव-जीवन के सरल व्यावहारिक पक्षों के साथ अध्यात्म और दर्शन के गूढ़ पक्षों का इसमें बहुत ही सरल, सहज तथा सटीक चित्रण किया गया है। समाज, व्यवहार, धर्म, दर्शन तथा परमार्थ की बहुत सारी शंकाओं का समाधान इसमें बहुत ही सुंदर ढंग से हुआ है। सद्गुरु कबीर ने जिस निर्भीकता के साथ मूल पद कहा है उसी निर्भीकता के साथ उसकी व्याख्या भी इस पारख प्रबोधिनी व्याख्या में की गई है। तर्कयुक्त चिंतन तथा अनेक ऐतिहासिक तथ्यों एवं साक्ष्यों के कारण वर्ण्य विषय अत्यंत सजीव बन गया है। प्रथम खण्ड, पृष्ठ 992, द्वितीय खण्ड, पृष्ठ 960, मूल्य—प्रथम खण्ड 250 रु०, द्वितीय खण्ड 250 रु०।

सद्गुरवे नमः

को हिन्दू को तुरुक कहावै,
एक जिमी पर रहिये
—सन्त कबीर

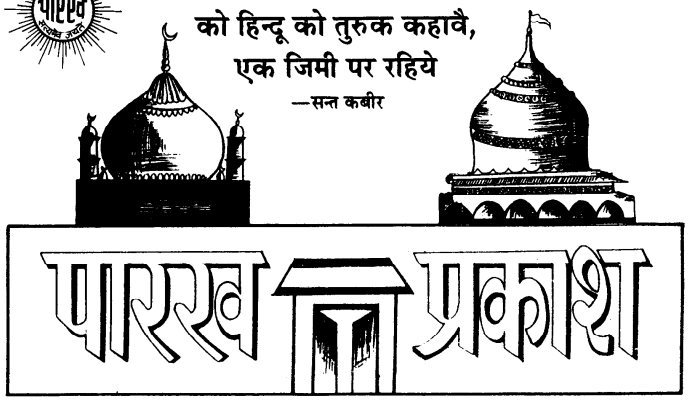

दुर्मति केर दोहागिन मेटै, ढोटहि चाँप चपेरे।
कहहिं कबीर सोई जन मेरा, जो घर की रारि निबेरे॥ बीजक, शब्द 3 ॥

वर्ष 47] इलाहाबाद, माघ, वि. सं. 2074, जनवरी 2018, सत्कबीराब्द 619 [अंक 3

बिना देखे परतीत लाई

दुरुस्त जिभ्या रहै बचन अमृत कहै, काम और क्रोध का खोच खोई।
ग्यान का पूर है रहनि का सूर है, संत जन जौहरी सबद जोई॥
ग्यान की दृष्टि में झूठ धोखा तजा, साँच बिन काज काहू न होई।
बोलता ब्रह्म से दूसरा कौन है, आतमा राम तहकीक सोई॥
देख दिवि दृष्टि करि दूसरा है नहीं, भर्म के फंद मति परै कोई।
दूसरा खोजते केते जुग टरि गये, सिद्ध समाधि नहिं पार पाई॥
सिद्ध साधक मुनि जन सब पचि मुए, ब्रह्म ऋषि बेद पढ़ि निगम गाई।
कोई आकार कहि कोई निराकार कहि, तत्त्व को छोड़ि निःतत धाई॥
समुझि नाहीं परै उक्ति सब कोई करै, आप को आप नहिं लखै भाई।
राज औ पाट तजि चले बनखंड गये, सिद्ध समाधि धुनि गगन छाई॥
अहरनिसि आस लागी रहै सुन्न में, बिना जल पिये क्या प्यास जाई।
आस लागी रहै प्यास बुझै नहीं, सुन्न गृह से फलहि कौन पाई॥
भर्मना छोड़ि दे ग्यान को मानि ले, आपको चीन्ह तू कौन भाई।
देख दिल ढूंढ़ि के सृष्टि काकी रची, जल से जुगति कहु को बनाई॥
कहैं कबीर तू ताहि तहकीक करु, लाल की खान कहु कौन ठाई।
कौन के तुम अहौ कहाँ तुम जाहुगे, बिना देखे परतीत लाई॥

पारख प्रकाश

कहहिं कबीर सोई जन मेरा

दुनिया के सभी मत-पंथ, सम्प्रदायों में एक से एक त्यागी एवं वैराग्यवान संत हुए हैं और आज भी हैं। किसी का यह अहंकार करना बेकार है कि हमारे मत-पंथ सम्प्रदाय में ही ज्ञानी, त्यागी और वैराग्यवान संत होते हैं। ज्ञान, वैराग्य, त्याग किसी मत-पंथ की बपौती नहीं है। ज्ञान, वैराग्य, त्याग आदि किसी मत-मजहब सम्प्रदाय की ठेकेदारी में नहीं हैं । दुनिया के किसी भी कोने में, किसी भी श्रेणी एवं सम्प्रदाय में त्यागी-वैराग्यवान संत हो सकते हैं, हुए हैं और हैं और जितने त्यागी-वैराग्यवान, ज्ञानी, निर्मल जीवन के संत हैं, वे सब हमारे लिए आदरणीय और पूजनीय हैं। उनका निर्मल जीवन हमारे लिए अनुकरणीय है। हमें उन सभी के जीवन से, जीवन के आचरण से प्रेरणा लेकर अपना कल्याण करने की आवश्यकता है।

एक से एक त्यागी और वैराग्यवान संत तो हुए हैं, लेकिन जिस बेलाग एवं चुनौती पूर्ण ढंग से कबीर साहेब ने कहा है वैसा शायद दुनिया में किसी ने नहीं कहा है। कबीर साहेब की हर बात विलक्षण रही है। बहुत सरल शब्दों में वे बहुत बड़ी बात कह देते हैं और कभी-कभी एकदम चुनौती भी देते हैं। सुर, नर, मुनि सबको चुनौती देते हुए पूर्ण आत्मविश्वास के साथ वे कहते हैं—

सो चादर सुर नर मुनि ओढ़ी।
ओढ़ि के मैली कीनी चदरिया॥
दास कबीर जतन से ओढ़ी।
ज्यों की त्यों धर दीनी चदरिया॥

कबीर साहेब इतनी चुनौती पूर्ण ढंग से आत्म विश्वास के साथ कहते हैं । इतने आत्मविश्वास के साथ शायद ही किसी ने कहा हो। कबीर साहेब सबको चुनौती देते हैं। सुर, नर, मुनि सभी ने जीवन की चादर को ओढ़ा लेकिन सब ने इस चादर को मैली कर दिया। साहेब कहते हैं किन्तु मैंने इसे ज्यों-का-त्यों बेदाग उतार करके रख दिया। "दास कबीर जतन से ओढ़ी" मैंने इसे इस प्रकार यत्न से ओढ़ा कि इसमें दाग नहीं लगने पाया। जैसी उजली चादर ओढ़ा था वैसे ही साफ-पाक अंत तक इसे मैंने रखा।

कोई इसे कबीर साहेब की गर्वोक्ति कह सकता है, परन्तु यह गर्वोक्ति नहीं अपितु साधनापरायण, निर्मल जीवन-आत्मलीन संत की साधिकारोक्ति एवं सहजोक्ति है।

जीवन की चादर में दाग लग जाना कोई बड़ी बात नहीं है। दाग लग गया तो उस दाग को हम रहने न दें, धो कर साफ कर लें। कपड़े में लगे हुए दाग पर हमारी दृष्टि जल्दी जाती है। हम पूरी कोशिश करते हैं कि कपड़े में लगे हुए दाग एकदम धुल जायें, दिखाई न पड़ें। उसके लिए क्या-क्या पाउडर, साबुन बनते चले जा रहे हैं, लेकिन जीवन की चादर, इसमें तो दाग पर दाग लग चुके हैं और लगते जा रहे हैं किन्तु इधर ध्यान ही नहीं है।

जीवन की इस चादर को निर्मल रखना यह हमारी विशेषता है। हर मनुष्य मुक्त होकर पैदा होता है। बन्धन आदमी स्वयं बना लेता है सुख और आनन्द की लालसा में पड़कर। आदमी जितना आनन्द की दौड़ में पड़ता है, लालसा में पड़ता है उतना ही जीवन की चादर में दाग लगते चले जाते हैं। एक समय ऐसा भी आता है कि चादर को देखकर विश्वास भी नहीं होता कि यह कभी साफ रही होगी इतने दाग लग गये होते हैं। दाग को ही हमने मान लिया कि यही चादर का वास्तविक स्वरूप है। लेकिन दाग वास्तविक स्वरूप नहीं है। हमारे जीवन में जितने भी दोष, दुर्गुण, दुराचार आते हैं वे हमारा अपना स्वरूप नहीं हैं, आगंतुक हैं और जो आगंतुक हैं उन्हें हटाया जा सकता है। काम, क्रोध, लोभ, मोह या अन्य मनोविकार ये हमारा स्वरूप नहीं हैं। यदि काम हमारा स्वरूप होता तो काम हमारे लिए दुखदायी न होता। क्रोध, लोभ, मोह हमारा स्वरूप होते तो ये सब हमारे लिए दुखदायी न होते।

किसी का स्वरूप किसी के लिए दुखदायी नहीं होता। काम की वासना में आदमी चौबीसों घण्टा नहीं रह सकता। काम की वासना जगती है आदमी कितना विह्वल एवं बेचैन हो जाता है। थोड़े समय काम की वासना रहती है और कितना चंचल हो जाता है आदमी! क्या इसी भावना में, काम की वासना में चौबीसों घण्टा रह सकता है? नहीं रह सकता। लेकिन निष्काम होकर पूरा जीवन आराम से जीया जा सकता है, और आराम से रहा जा सकता है। इसलिए काम हमारा स्वरूप नहीं है, निष्कामता हमारा स्वरूप है।

जब क्रोध आता है तब आदमी कितना अविवेक में पड़ जाता है। सारा ज्ञान, विवेक, सारी बुद्धि, होश-हवास सब भूल जाता है। फिर नहीं कहने योग्य बात कहता है; नहीं करने योग्य काम करता है। थोड़े समय का क्रोध जीवन को नरक बना देता है। क्या क्रोध में आदमी चौबीसों घण्टा रह सकता है। कोई नहीं रह सकता। लेकिन निष्क्रोध में, क्षमाभाव में पूरा जीवन आराम से रहा जा सकता है। कोई परेशानी नहीं होगी। ऐसे ही लोभ, मोह एवं अन्य सारे मनोविकारों को समझ लें। काम, क्रोध, लोभ, मोह मनोविकार हमारे स्वरूप में नहीं हैं। हमारा स्वभाव नहीं हैं। ये सब आयातीत हैं, आगंतुक हैं, बाहर से आये हुए हैं। हमने मान लिया कि हमारा स्वरूप ही है, इनका त्याग नहीं किया जा सकता।

बहुत-से लोग कहते हैं कि काम, क्रोध, लोभ मोह ये तो प्राकृतिक हैं। इनसे कोई बच नहीं सकता। कहते हैं ये तो मौलिक प्रवृत्ति हैं किन्तु ये मौलिक प्रवृत्ति नहीं हैं। ये सब केवल भावनात्मक प्रवृत्ति हैं। भूख, प्यास, नींद के समान क्या काम भी मौलिक प्रवृत्ति है? कोई ज्ञानी से ज्ञानी विरक्त क्यों न हो, जीवन में उसे भी भोजन की आवश्यकता होती है, पानी नींद की आवश्यकता होती है। भोजन, पानी और नींद को त्याग कर कोई आदमी जीवित नहीं रह सकता। जीवन नहीं जी सकता। जो मौलिक प्रवृत्ति है उसका जीवन में त्याग नहीं हो सकता, किन्तु काम का त्याग करके कितने लोग जीवन जी रहे हैं, कोई परेशानी नहीं हो रही है। बल्कि काम में पड़ करके उद्विग्नता होती है। काम में पड़कर आदमी और दुख-दर्द एवं बन्धन में पड़ता है। तो कैसे माना जाये कि काम मौलिक प्रवृत्ति है।

काम यदि मौलिक प्रवृत्ति होता तो चंचलता का, विकलता का, दुख का कारण क्यों बनता। जैसे भूख, प्यास और नींद के बिना हम नहीं रह सकते, क्या ऐसे ही काम के बिना रह नहीं सकते? प्रत्यक्ष देख रहे हैं कि अनेक संत रह रहे हैं। जैसे वे रह रहे हैं वैसे हम भी रह सकते हैं। तो कैसे मानें कि यह मौलिक प्रवृत्ति है। यह मौलिक प्रवृत्ति नहीं है। भावना से उत्पन्न होता है। गलत चिन्तन का परिणाम है काम, क्रोध। यदि सही चिन्तन हो तो काम की भावना क्यों जगे। काम, क्रोध, लोभ, मोह हमारा स्वरूप नहीं हैं, हमारे स्वभाव में ये नहीं हैं, आगंतुक हैं और इनको हम पूरी तरह से हटा सकते हैं। लेकिन हमने मान लिया कि हमारा स्वरूप है तब हटायें कैसे इनको? इसलिए जीवन पर्यन्त इनमें पड़े रहते हैं। जब स्वरूप और स्वभाव मान लिया गया तो हटाने की बात ही नहीं है। इसलिए जीवन में दाग पर दाग लगते चले गये। यह जीवन की हार है।

हम अपने को कबीर साहेब का अनुगामी मानते हैं, शिष्य मानते हैं, कबीर साहेब का गीत गाते हैं, किन्तु केवल कबीर साहेब के गीत गाने से काम नहीं चलेगा, कबीर साहेब की वन्दना करने से भी काम नहीं चलेगा। कबीर साहेब कितने महान क्यों न हों उनकी वन्दना-प्रार्थना करके हमारे जीवन में कुछ भी सुधार होने वाला नहीं है। किन्तु उन्होंने जो रास्ता बताया है उस रास्ता पर जब हम चलेंगे तभी हम सही अर्थों में कबीर के अनुयायी हो सकते हैं। कबीर साहेब तो कहते हैं—

कहहिं कबीर सोई जन मेरा,
जो घर की रारि निबेरे।

वह आदमी मेरा अनुयायी और अनुगामी है जो अपने अन्तःकरण रूपी घर में मचे हुए वासना के झगड़े को, विकारों के झगड़े को मिटा देता है, और भी वे कहते हैं—

नीर क्षीर का करे निबेरा।
कहहिं कबीर सोई जन मेरा॥

जो नीर और क्षीर का निबेरा करता है, सार-असार का, जड़-चेतन का अलग-अलग निर्णय करता है, निर्णय करने के बाद असार को त्यागकर सार को ग्रहण करता है, जड़ की आसक्ति त्यागकर चेतन में स्थित होता है वह मेरा अनुगामी है, वह मेरा शिष्य है। हम कबीर साहेब के गीत गाते रहें और नीर-क्षीर का निर्णय हमारे पास है नहीं, अन्दर अंतःकरण में जो झगड़ा चल रहा है उसका निपटारा किया नहीं, तो कबीर साहेब के गीत गाते हुए भी, हम मानो कबीर साहेब से बहुत दूर हैं। हमने उन्हें कुछ समझा नहीं। इसलिए साहेब ने कहा है—

मुख कछु और हृदय कछु आना,
सपनेहु काहु मोहिं नहीं जाना॥

जिसके मुख में कुछ और है तथा हृदय में कुछ और है वह सपने में भी मुझे नहीं समझ सकता, मेरे विचारों को नहीं समझ सकता। सद्गुरु कबीर साहेब कह गये हैं—

दास कबीर जतन से ओढ़ी,
ज्यों की त्यों धर दीनी चदरिया।

साहेब कहते हैं मैंने अपनी चादर को बहुत यत्न पूर्वक ओढ़ा और ज्यों का त्यों उतार कर रख दिया। तुम भी वैसे करो तब मेरे अनुगामी हो सकते हो। अब प्रश्न होता है, हमारे जीवन में बहुत दाग लग गये हैं। तब हम क्या करें? दाग लग गये, तो लग गये, अब उसे धोने का काम करें। कोई आदमी यह थोड़े कहता है कि मेरी चादर तो सफेद थी, इसमें दाग लग गया अब क्या करूं। किसी से पूछता नहीं है। स्वयं उसे धोने में लग जाता है। इसी प्रकार जीवन-चादर की बात है। किसके जीवन में दाग नहीं लगा। बहुतों के जीवन में दाग लगा। तो क्या उन्होंने दाग को रहने दिया। नहीं। उन्होंने दाग को धो दिया। जिन्हें हम बड़े-बड़े संत कहते हैं वे भी पहले इसी संसार में रहते थे। वे भी रागी-भोगी थे, लेकिन वे जाग गये और जाग करके ऊपर उठ गये।

तथागत बुद्ध ने 28 वर्ष की उम्र में घर छोड़ा। शादी हुई थी, बच्चा हुआ था। किन्तु घर छोड़कर महा वैराग्यवान हुए। अपने जीवन को पूरी तरह धो डाला। महावीर स्वामी ने भी 28-30 वर्ष की उम्र में घर छोड़ा। उनकी भी शादी हुई थी, एक पुत्री हुई थी और फिर जब घर त्याग किये तब महा वैराग्यवान, अखण्ड त्यागी हुए। ये तो बड़े पुरुष हैं जिनका नाम प्रसिद्ध है, कितने और भी ऐसे संत हुए हैं और हैं। हमारे कबीरपंथ में ही सद्गुरु श्री काशी साहेब, श्री लाल साहेब महा वैराग्यवान संत हुए हैं। श्री काशी साहेब अंग्रेज शासन के जमाने में महाराष्ट्र में स्टेशन मास्टर थे। स्टेशन में बैठे काम कर रहे थे। स्टेशन के पास एक किसान खेत जोत रहा था। थोड़ा थका तो खेत की मेड़ पर बैठकर बीजक का पाठ कर रहा था। श्री काशी साहेब ने सुना तो आकर्षित हुए, उस किसान के पास गये और पूछा कि किस ग्रंथ का पाठ करते हो? उसने बताया कि बीजक ग्रंथ है। पूछा—किसका बीजक है? तो बताया कबीर साहेब का। कहां मिलता है? हमारे गुरु स्थान में। तुम्हारे गुरु कहां हैं? तो पता बताया। श्री काशी साहेब पता लगाते गये और फिर कुछ दिनों में पूरा उसी में समर्पित हो गये। उस समय उनके तीन संतान हो चुकी थी, लेकिन भरी जवानी में स्टेशन मास्टर से इस्तीफा देकर गृह त्याग किये और अखण्ड वैराग्यवान हुए।

श्री लाल साहेब भी गृहस्थी में थे। उनके भी तीन संतान हुई थी। उन्होंने गृह परित्याग किया और महा वैराग्यवान हुए। तो हम यह न देखें कि बीता जीवन कैसा रहा है। जैसा रहा है वैसा रहा है। आज हम जागें और यदि आज हम जाग जाते हैं तो हमारा पूरा कल्याण हो जायेगा। जागने का मतलब यह नहीं कि घर छोड़ दें तब माना जायेगा कि आप जागे हुए हैं। जहां रहें गृहस्थी में रहें, विरक्ति में रहें इस जीवन को ठीक से जीयें, दाग न लगने दें। जो दाग लग चुके हैं उन दागों को धोने का प्रयास करें और धोने का प्रयास करेंगे तो जीवन में लगे हुए दाग धुल सकते हैं। दाग को धो लेना ही ज्ञान कहने-सुनने का अर्थ होता है और यदि हम मानें कि ज्ञान केवल कहने-सुनने के लिए है, मनोरंजन के लिए है, तब तो हम गये। और अब तक हमने यही माना भी है। कह लिये, सुन लिये, बस बेड़ा पार हो गया। धोखे में न रहें, इससे बेड़ा पार नहीं होगा। बेड़ा तो और डुबता चला जायेगा।

हम अपने को कबीर अनुयायी कहते हैं, कबीर प्रेमी कहते हैं तो जो आदर्श सद्गुरु कबीर साहेब का है उसको सामने रखकर जीवन की चादर को धोने का काम करें। यदि इस जीवन की चादर को हम धोने का काम करते हैं—हमारे महापुरुष गण चाहे वे किसी मत-पंथ के हों, जैसे वे आदर्श दिखला गये हैं, जीवन को निर्मल कर गये हैं, वैसे हम अपने जीवन को निर्मल करते हैं, तो यही उन महापुरुषों के प्रति श्रद्धांजलि होगी, यही उनके बताये पथ में चलने का फल होगा। किन्तु श्रद्धाजंलि अर्पित भी करते गये, गुण गाते भी गये और जीवन को बिगाड़ते भी गये। इससे कोई लाभ नहीं होगा। केवल दिखावा होगा। हम दिखावा में पड़े रहना चाहते हैं। हम धार्मिक होना नहीं चाहते, आध्यात्मिक होना नहीं चाहते, दिखना चाहते हैं। लोग हमें साधु कहें, महात्मा कहें, ज्ञानी कहें, प्रवक्ता कहें, त्यागी-वैरागी कहें, हमारा आदर करें। हम दिखाना चाहते हैं बाहर से, होना नहीं चाहते। होना अन्दर से होता है। कोई न जाने, हमें महात्मा न कहे, त्यागी-वैरागी न कहे, मान-सम्मान न दे, लेकिन यदि हमारे भीतर संतत्व है, साधुत्व है तो हमारा क्या बिगड़ता है। हमारा कल्याण हो जायेगा।

दुनिया भर के लोग हमें साधु, महात्मा, त्यागी, वैरागी कहते हैं, स्वामी जी, महाराज जी कहते हैं और हजारों-लाखों लोग हमारी विनय-वन्दना करते हैं किन्तु हमारे भीतर भरी है भंगार, अन्दर भरा है कलुष तो हम नरक में जा सकते हैं। इसके विपरीत हजारों-लाखों लोग हमारी निन्दा करते रहें किन्तु हमने अपना आत्मसुधार कर लिया है, वासना का त्याग कर लिया है, हममें त्याग, वैराग्य है तो हमारा कल्याण होने में कोई दिक्कत नहीं है। इसलिए हम धार्मिक-आध्यात्मिक दिखने का प्रयास न करें, बल्कि जीवन का सुधार करें। अन्दर देखें कि हम अपने में क्या हैं। यदि हम अपने भीतर, अन्दर परीक्षण करते रहेंगे और दोषों को निकालने का प्रयास करते रहेंगे तो पूरा जीवन निर्मल हो सकता है। और निर्मलता ही ईश्वरत्व और मोक्ष की प्राप्ति है। हम और आप ऐसा करने में पूरी तरह स्वतंत्र हैं, समर्थ हैं। हमें इसी दिशा में चलने की आवश्यकता है।

—धर्मेन्द्र दास

वृद्धावस्था

रचयिता—डॉ. अमृत सिंह

हम पथिक अन्तिम पड़ाव के,
जिन्दगी के उतार चढ़ाव के॥

है वृद्धावस्था संध्या बेला,
और समापन जीवन मेला।
गये बीत दिन राग रंग के,
वानप्रस्थ की आई बेला।
रही न मन में शेष लालसा,
हम पंछी प्यासे, प्रेम भाव के॥

अंग शिथिल अब आई थकावट,
याददास्त न रही यथावत।
चेहरे पर आ जमीं झुर्रियाँ,
बालों ने की खुली बगावत।
रहा न अब वो जोश रक्त में,
कट रहे अब दिन ढलाव के॥

करी वक्त ने बड़ी शरारत,
सिर से सारे बाल नदारद।
क्षीण बाहुबल छड़ी सहारा,
व्यर्थ दंत बिन भोज पदारथ।
साजिश ये बेरहम वक्त की,
हवा हो गये हर्ष ख्वाब के॥

ढीठ सुगर ने सेंध लगाई,
सांस फूलती बी.पी. हाई।
दृष्टि दोष आँखों पे चश्मा,
कानों से कम पड़े सुनाई।
घुटनों ने भी घुटने टेके,
काटे कटें न दिन तनाव के।
हम पथिक अंतिम पड़ाव के॥

लोक जीवन में संत कबीर

लेखक—श्री धर्मदास

(गतांक से आगे)

निर्गुण–16

लाली लाली डोलिया हो, हमरी दुआरिया, कि अहो राम
पिया मोर लेके अइले, सखी हे, संगवा में चारि गो कहार,
अबहीं उमरिया मोरी बारी रे अनारी,
सखी हे, जिया मोर थर–थर कांपे
सखी सब करेली सिंगार, कि जिया मोर थर–थर कांपे
बाबा मोरा दुअरा रोबे, भैया हो अंगनमा राम
भौजी मोहे धय के रोबे, माइ के नयन जलधार सखी हे
पिया मोर लेके अइले संगबा में चारि गो कहार
एक मन करे, एक मन करे, कहरा डोलिया फिरौंती, सखी हे
दूजे पिया रूसि जइहें, होई जैहे नैहरा के भार, पिया मोर
लाली–लाली डोलिया हो, पिया मोर लेके अइले संगवा में,
चारि गो कहार!

लाल–लाल डोली लेकर मेरे दुआरे पर, हे सखी संग में चार कहार हैं, मेरे प्रीतम पधारे हैं परन्तु सखी, अभी तो मेरी उम्र छोटी है और मैं अनाड़ी हूं। इसलिए हृदय मेरा थर–थर कांप रहा है। सखियां सब सिंगार कर रही हैं लेकिन जी धक–धक कर रहा है। क्योंकि बाबा द्वारे पर रो रहे हैं, आंगन में भैया रो रहे हैं। भाभी मुझसे लिपटकर रो रही हैं और हे सखी! माई के नयन से जलधारा प्रवाहित है। एक बार मन करता है कि काश, कहार एवं डोली फिरा देती परन्तु फिर सोचती हूं कि इससे प्रियतम रूठ जायेंगे और नैहर पर मैं भार हो जाऊंगी।

निर्गुण–17

के तोहरा संग जाई सुगनमा, के तोहरा संग जाई
आवत के दिनमा बजल बधाई, जात के मातम छाई
भाई–बन्धु और कुटुम कबीला, रोबे आंसू बहाई
चंदन धूप दशांग जला के सुन्दर साज सजाई
चार जने मिल कांध लगा के, रोबत चलल उठाई
छाती पीट के माता रोबे, बांह पकड़ के भाई
चुड़ी फोड़ के तिरिया रोबे, चित लाला के बौराई
दुअरे तक तिरिया पहुँचइहैं, कुटुम घाट तक जाई
जार फूंक के खाक बनइहें, बहुरि घर लौट आई

ये सुगना! तुम्हारे साथ कौन जायेगा? (अर्थात तुम अकेले ही जाओगे)। जन्म संसार में आने का दिन होता है और उस दिन बधाई बजती है, उत्सव होता है। संसार से जाते समय (शरीरांत पर) चारों तरफ मातम छा जाता है। भाई–बन्धु और कुटुम्ब–कबीला आंसू बहा–बहाकर रोते हैं। शवयात्रा के पूर्व मृतक को स्नान कराया जाता है, चोवा–चन्दन और सुगन्ध मल–मलकर शरीर निर्मल किया जाता है और कोरा वस्त्र (कफन) पहनाया जाता है। ऊपर से रंग–बिरंगे चादर ओढ़ाये जाते हैं। इसी का वर्णन है कि चन्दन, धूप और दशांग (दस सुगंधित वस्तु का मिश्रण) जलाकर और मृतक को सुन्दर ढंग से सजाकर अंतिम यात्रा के लिए तैयार किया जाता है। चार जने कांधे पर उठाकर रोते हुए चलते हैं। उस क्षण माता छाती पीट–पीटकर रो पड़ती है, भाई बांहों में भरकर रोता है। तिरिया (पत्नी) हाथ की चुड़ियां तोड़कर रोती है तथा सुख के जो पल साथ–साथ बीते थे उसे सोच–सोचकर पागल–सी हो जाती है। यहां तक तो सबका साथ था लेकिन इसके बाद धीरे–धीरे साथ छोड़ने लगते हैं। पत्नी दरवाजे तक पहुंचावेगी और सगे–सम्बन्धी घाट (मरघट–श्मशान) तक जायेंगे। घाट पर जला–जलाकर खाक बना देंगे और घर लौट आयेंगे। ये सुगना, तुम्हारे साथ कोई अपना नहीं जायेगा।

निर्गुण–18

बैठल रोबेली गुजरिया हो, चुनरिया में दाग लगि गइल
कैसे जाईं पिया के नगरिया हो, चुनरिया में दाग लगि गइल
आइल गवना के हमरो सनदेसबा हो,
आइके बा पिया के देसबा
कांची बाड़ी हमरी उमरिया हो, चुनरिया में दाग लगि गइल
नैहर में चारि गो यार बनउली,
दिन रात उनहीं में नैना लड़वलीं
उनके सुतौली हम सेजरिया हो, चुनरिया में दाग लगि गइल
चुनरी के दाग हम कैसे छोड़ाइब,
कैसे हम सजना के मुंहवा देखाइब
बरसेली अंखिया के बदरिया हो, चुनरिया में दाग लगि गइल

बैठकर गुजरिया (प्रेमिका, पत्नी) रोने लगती है कि मेरी चुनरी (मानव-तन) में दाग लग गये हैं। मैं पिया के नगर (परलोक) कैसे जाऊं? अपने शुभाशुभ कर्मों का पुनरावलोकन करके मनुष्य स्वयं संकोच करने लगता है। मेरे गौना का संदेश आ गया है। मुझे पिया के देश जाना ही होगा। लेकिन मेरी आयु छोटी है और चुनरी में दाग लग गये हैं। मायका में मैंने चार यार बनाई थी और दिन-रात उन्हीं में घुलीमिली रहती थी। कबीरी भाषा में 'चार यार' की व्यापक परिभाषा है जो गांव तक पहुंचा है शुभ-अशुभ एवं लाभ-हानि या राग-द्वेष एवं मान-अपमान अर्थात चत्तुष्टय अन्तःकरण मन, चित्त बुद्धि एवं अहंकार। मनुष्य को जब आभास हो जाता है कि उसका अन्तिम घड़ी नजदीक है तब इस प्रकार का चिंतन करता है और जिन गलतियों को किये रहता है उन्हें दुरुस्त करने के समय का अभाव हो जाता है तब पछतावा भी करता है। मनोवृत्ति स्वीकार करती है कि उन्हीं चार गलत मित्रों को अपने में लिपटाकर अपने शरीर को दागदार बनाती है। क्योंकि सजना (गुरु) को मन, चित्त, बुद्धि एवं अहंकार को अनियंत्रित छोड़कर—हमने भुला दिया। अब सद्गुरु की ये बातें याद आती हैं तब पछतावा होता है कि हमने क्या भूल कर दिया? अब भूल सुधारने का समय नहीं बचा क्योंकि हमारे द्वारे पर डोली आ पहुंची है। अफसोस है कि शरीर रूपी चुनरी में दाग लग गये हैं। चुनरी का दाग मैं कैसे छुड़ाऊं? प्रीतम को अपना मुखड़ा कैसे दिखाऊंगी? इसी चिन्ता में आंखों से बरसात हो रही है।

निर्गुण-19

छोड़ि के परैला ये संवरू, अब कैसे भवनमा रहियै ये राम
जहिया से गेला पैठेला नहिं पतिया
रहि-रहि याद आवे तोहरी सुरतिया
बिरही बनैला ये संवरू, कैसे भवनमा रहियै ये राम
आंख के इड़ोत होत घटि गेलै नेहिया
खिंजतिया सहि-सहि, हम खींचलियै देहिया
घुमरी खेलैला ये संवरू, कैसे भवनमा
कौने सैतिनिया से नेहिया लगैला, हमरा घर में टीटहरी बनैला
हमरा से कनियां कटैला ये संवरू, कैसे भवनमा रहियै ये राम

सांवलिया, सांवरिया (सांवला) प्रायः कृष्ण के लिए प्रयुक्त होता है। कृष्ण को बड़ा प्रेमी माना गया है। अतएव लोकगीतों में लौकिक प्रेमी के लिए सांवरिया कहा जाता है। प्रेमातिरेक में सांवरिया का अपभ्रंश 'संवरू' बना है। पति-वियोग में एक विधवा स्वर्गीय पति को याद कर-कर के तड़पती हुई अपने आप बड़बड़ाती है। पति से शिकायत करती है कि तुम छोड़कर परा गये (भाग गये)। अब मैं उस घर में कैसे रहूं। जब से तुम गये कोई पत्र नहिं भेजा। रह-रहकर तुम्हारी सूरत मुझे याद आती है। तुम मुझे बिरहीन बनाकर छोड़ गये। आंखों से जैसे ही तुम ओझल हुए परिवार वालों का हमारे प्रति नेह घट गया। उन सब की खिजलाहट सहकर अपने शरीर को खींच रही हूं। तुम मेरे साथ घुमरी (गोल-गोल घुमना) का खेल कर रहे हो। मैं उस घर में तुम्हारे बिना कैसे रहूं?

तुमने किस सौत से प्रीत लगाकर मुझे घर में टिटिहरी (टीं-टीं बोलने वाला एक पक्षी) बनाकर छोड़ दिया है। ये संवरू! तुमने मुझसे किनारा कर लिया है। मैं ससुराल (भवन) में कैसे रहूं?

निर्गुण-20

ढेर दिन बिति गेलै, पिया के सनेस नहि अयलै
अरे सखिया रे, गौना के दिनमा भिरिया अयलै ये राम
हाथ छूछे भांड़ छूछे, कोई नहिं बतिया रे बूझे
अरे सखिया रे, कौने विध कहरवा हमें फेरैबय ये राम
ललका ओहरबा ओढ़ी के, डोली में सुताइये देलक
अरे सखिया रे, कहरा झकझोरी जियरा निकाल देलक हो राम
दास कबीर हो रामा, गावे निरगुनमा हो,
गाई-गाई पंचन के समुझावे हो
ढेर दिन बिति गेलै, पिया के सनेस नै अयलै,
अरे सखिया रे, गौना के दिनमा भिरिया आये गेलय ये राम,

बहुत दिन बीत गये हैं परन्तु पिया का संदेशा नहीं आया है। हे सखी! मेरा गौना का दिन निकट आ पहुंचा है। मेरा हाथ छूंछा (खाली) है अर्थात मेरे पास कुछ रुपया-पैसा नहीं है। भंडहर (मिट्टी का बरतन) भी खाली है और इस बात को कोई नहिं बूझ रहा है कि कहार को किराया-भाड़ा चुकाये बिना खाली हाथ कैसे फिरा पाऊंगी। एक लाल ओहार ओढ़ाकर मुझे डोली में लिटा दिया। हे सखी! कहार झकझोर कर पालकी ढो रहा था, मानो जान निकालकर किराया वसुलना चाहता हो। कबीर साहेब निर्गुण गाकर सांसारिक मायाजाल से मुक्त होने का संदेश पंचों यानी लोगों के बीच सुनाते हैं।

'निर्गुण' नाम से लोकधुनों में गाये जाने वाले लोकगीतों (folk lores) के ये बानगी भर हैं जिन्हें एक विशेष अवसर 'मृतुकी' पर लोक मण्डली के द्वारा गाया जाता है। रचनाकार का पता नहीं परन्तु अवधी, भोजपुरी एवं मगहरी भाषाई क्षेत्रों के लोकप्रिय धुन राग-'कहरवा एवं विदेशिया' में हारमोनियम, ढोलक, झांझमंजीरा के संगत में मृतुकी में आये लोग शोक भूल जाते हैं। मातम भूल कर जीने की राह पर अग्रसर करने वाला वह मंजर एक अद्‌भुत दृश्य प्रस्तुत करता है। कबीर का सिद्धान्त कहें या मंत्र निर्गुण में ऐसे समाहित होते हैं कि सोचने पर विवश होना पड़ता है कि जन-जन तक पहुंचाने का माध्यम क्या था? जीवन-मरण के गंभीर रहस्य को साधारण जन में सरस-भाव का संचार विगत छः सौ बरसों से जारी कैसे है? कबीर-कालीन समय में युद्ध एवं मार-काट रोजमर्रा की बात थी और खासकर गरीब-गुरबा की जिन्दगी ऐसे मसली जाती थी जैसे पैरों के नीचे आकर चींटी मर जाती है। इसका सरलीकरण करते हुए डॉ. श्यामसुन्दर दास ने कबीर ग्रन्थावली में लिखा है (1) हिन्दू जाति के लिए धीरे-धीरे एक भार-सा होने लगा, कहीं से आशा की झलक तक न दिखाई देती थी। चारों ओर निराशा और निरवलंबता का अंधकार छाया हुआ था। हिन्दू जाति में से जीवन शक्ति के सब लक्षण मिट गये (प्रस्तावना पृ. 11-12) (2) कबीर का जन्म ऐसे समय में हुआ जबकि मुसलमानों के अत्याचारों से पीड़ित भारतीय जनता को अपने जीवित रहने की आशा नहीं रह गई थी। और न उसमें अपने आपको जीवित रखने की इच्छा ही शेष रह गयी थी। उसे मृत्यु या धर्मपरिवर्तन के अतिरिक्त और कोई उपाय ही नहीं दीख पड़ता था। (प्रस्तावना पृ. 13) कबीर साहेब ने भी स्वयं उक्त दुःखों को आत्मसात किया था अतः उनका निर्गुण दुःख से सुख का परिचय कराने वाला सिद्ध हुआ। 'सहज समाधि', 'सहज रहनी', 'पद सुखदाई' तथा 'सुखदुख के कोई परे परम पद' जैसे गूढ़ एवं गम्भीर विषय की सरल व्याख्या निर्गुण में मिलता है। ग्रामीण लोग जो आज भी शहरीकरण से अप्रभावित हैं, इनसे जीने की प्रेरणा प्राप्त करते हैं। इन निर्गुणों में लोकप्रसिद्ध एक गीत है "कौनो ठगवा नगरिया लूटल हो' जिसे पं. कुमार गन्धर्व ने गाकर विश्वप्रसिद्ध बनाया है। बड़े-बड़े मंचों पर जब कुमार गंधर्व प्रस्तुत किया करते थे तब ऊंचे-ऊंचे पदवी वाले एवं बड़े-बड़े बुद्धिजीवी भी भाव-विभोर होकर एक अनपढ़ की काव्यगीतिका पर झुमते नजर आते थे। जगजीत सिंह तथा अनूप जलोटा जैसे बड़े-बड़े गायकों की प्रस्तुति पर सारा सभागार आज भी झुमता है। मानव शरीर की नश्वरता और स्वार्थपरायण संसारी रिश्तों का भ्रम-निवारण निर्गुण-गायन करता है—

कौनो ठगवा नगरिया लूटल हो।
चंदन काठ के बनल खटोलना, ता पर दुलहिन सूतल हो।
उठो री सखी मोरि मांग संवारो, दुलहा मोसे रूठल हो।
आये यमराज पलंग चढ़ि बैठे, नैनन आंसू छूटल हो।
चारि जने मिलि खाट उठाइन, चहुं दिस धूं-धू उठल हो।
कहत कबीर सुनो भाई साधो, जग से नाता छूटल हो।

लोक मंच या शवयात्रा के अवसर के निर्गुण गीत एवं विद्वानों और रईसों की महफिल में कुमार गंधर्व जैसे बड़े गीतकारों के निर्गुण-गायन "कौनो ठगवा नगरिया लूटल हो" में कोई फर्क नहीं मिलता। भले उन निर्गुण-गीतों की रचना स्वयं कबीर ने नहीं की हो परन्तु भावार्थ में अथवा कबीर-सिद्धान्त में रत्ती-भर अन्तर नहीं है।

यहां एक बात और याद रखना असंगत नहीं होगा कि आचार्य क्षिति-मोहन सेन ने लोकगायकों से कबीर पद सुनकर संग्रह कराया था। उन्हीं पदों के चुने हुए पदों को रवींद्रनाथ ठाकुर ने अंग्रेजी में अनुवाद किया था। उन पदों को आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने 'कबीर' नाम की पुस्तक के अंत में 'कबीर-वाणी' नाम से छापा है। पद सं. 73 का बोल एवं भाव वही हैं जो ग्रामीणों के निर्गुण-गीत में हैं।

आयो दिन गौने कै हो, मन होत हुलास।
डोलिया उठावे बीजा बनवां हो, जहां कोई न हमार।
पइयां तोरी लागौं कहरवा हो, डोली धर छिन बार।
मिल लेबै सखिया सहलेर हो, मिलौं कुल परिवार।
दास कबीर गावे निरगुन हो, साधो करि ले विचार।
नरम-गरम सौदा करि ले हो, आगे हाट ना बाजार।

इस निर्गुण के शब्द-विन्यास से स्पष्ट होता है कि बिहार प्रान्त की मगही भाषा से उठाया गया है। ❑

समस्या और समाधान

लेखक—विवेक दास

आज का युग मोबाइल और कम्प्यूटर का युग है। राकेट और जेट विमान का युग है। हमने बुद्धिबल द्वारा बहुत विकास किया है। आज हम सभी सुख-सुविधा के साधनों से सम्पन्न हैं। जो सुख-सुविधा पहले बड़े-बड़े राजा-महाराजाओं को भी नसीब नहीं होती थी आज सामान्य व्यक्ति भी उन सुख-सुविधाओं का मजे से उपभोग कर रहा है। पहले लोग आकाश में उड़ने की कल्पना करते थे, आज हम सचमुच आकाश में उड़ने लगे हैं। पहले लोग पानी में चलने की बात सोचते थे, कल्पना करते थे। आज हम सचमुच पानी में चलने लगे हैं। पहले लोग दूरदृष्टि और दिव्यदृष्टि की बात सोचते थे, आज हम सचमुच यहां बैठे-बैठे ही देश-दुनिया की खबर ले लेते हैं। पहले लोग आग, हवा और पानी को वश में करने की कल्पना करते थे, आज हमने सचमुच यह कर दिखाया है। है न अद्‌भुत बात! और भी हमने हैरतअंगेज काम कर लिये हैं और वास्तव में 'मनुष्य शिरमौर प्राणी है धरा के' इसको हमने सिद्ध कर दिया है।

किन्तु इतना सब कर गुजरने के बाद भी क्या हम सही अर्थ में सुखी और संतुष्ट हो पाये हैं। क्या वह प्रसन्नता, वह आनंद, वह उल्लास आज रह पाया है, जो पहले हुआ करता था। क्या हमारी वह प्रसन्नता, वह आनंद, वह उल्लास छिन-सा नहीं गया है; हम बाहर से संपन्न होने के बावजूद, अन्दर से विपन्न नहीं हो गये हैं। हम बाहर से प्रगतिशील और उन्नतिशील दिखते हुए भी अनेक समस्याओं से ग्रसित नहीं हो गये हैं। जी हां! हम बहुत अधिक प्रगति करने के बावजूद भी अनेक प्रकार की समस्याओं से ग्रस्त होते जा रहे हैं। कितनी ही समस्या सुरसा की तरह हमारे पीछे मुख बाये खड़ी है।

आयें देखते हैं ये समस्याएं क्या हैं—

1. आर्थिक समस्या—वैज्ञानिक संसाधनों के इस युग में आर्थिक समस्या बढ़ती जा रही है। पहले संसाधन कम थे तो आवश्यकता भी कम थी। आज संसाधन बढ़ गये हैं तो आवश्यकता भी बढ़ गयी है। वैसे मनुष्य की मूल आवश्यकता तो रोटी, कपड़े और मकान की ही है जो थोड़े परिश्रम से सहज ही पूरी हो जाती है, किन्तु और भी अनेक चीजें हैं जैसे गाड़ी-मोटर, कम्प्यूटर, मोबाइल, टी.वी., फ्रिज, कूलर, बंगला आदि, जिन्हें देखकर आदमी आवश्यकता महसूस करता है और इसको पूरा करने के चक्कर में आर्थिक समस्या से ग्रसित होता जाता है।

वैसे आज की मंहगाई के बढ़ते चरण में सामान्य वर्ग के लोगों के लिए रोटी, कपड़े और मकान की व्यवस्था करना कठिन-सा हो गया है और ऊपर से अन्य संसाधनों की चाहत ने आदमी को विचलित और परेशान कर दिया है।

एक सज्जन जो रत्नकलाकार हैं उसकी मासिक आय बारह से पंद्रह हजार है। इतने में भी वह सुरत जैसे शहर में रहकर अपने परिवार को पाल रहा है और खुश है। और एक आदमी वह है जिसकी पचास हजार की आय होने के बावजूद भी रोना रो रहा है। तो अधिकतम लोग व्यर्थ की इच्छा और आकांक्षा बढ़ाकर आर्थिक समस्या से जूझ रहे हैं और इसी के चलते नाना प्रकार की समस्याएं समाज में विकसित हो रही हैं जैसे लूट, चोरी, मिलावटबाजी, घोटाला, भ्रष्टाचार आदि। आदमी जब सही रास्ते पर चलकर अपनी इच्छा और आकांक्षाओं की पूर्ति नहीं कर पाता तो गलत रास्ता अपनाता है। आज पूरा विश्व इन समस्याओं से जूझ रहा है।

2. सामाजिक समस्या—शिक्षा के क्षेत्र में हमने विकास बहुत किया और यह माना जाता रहा है कि शिक्षा के विकास से सुन्दर और सभ्य समाज की रचना होगी किन्तु आज शिक्षा के बावजूद भी अनेक समस्याएं समाज में बढ़ती जा रही हैं। ऊंच-नीच की भावना, नारी-पुरुष की असमानता; हिंसा, हत्या, बलात्कार और भ्रूण हत्या जैसे भयंकर अपराध समाज में फल-फूल रहे हैं।

आज वैसे लगता है कि ऊंच-नीच की भावना समाप्त हो गयी है और शहरों में इसका पता चलता भी नहीं है किन्तु कई क्षेत्रों में आज भी इसकी जड़ें मजबूत बनी हुईं हैं और आज भी लोगों के साथ अमानवीय व्यवहार किया जाता है। शहरों और नगरों में भले ही जातिवादी ऊंच-नीच की भावना न हो किन्तु वहां यह दूसरा रूप ले लिया है। वहां यह गरीब और अमीर के रूप में पनप रहा है और जैसे जातिवादी भावना से ग्रस्त लोग कुछ लोगों को निम्न और तुच्छ कहकर उनके साथ अमानवीय व्यवहार करते हैं ठीक वैसे ही अमीर लोग गरीबों के साथ कर रहे हैं। ढंग बदल गया है बात वही है। गरीब और नीचे तबके के लोगों को इंसान समझा ही नहीं जाता है। समाज में ऊंचे और धन सम्पन्न लोग गरीबों का शारीरिक, आर्थिक, मानसिक सब प्रकार का शोषण कर रहे हैं।

आज शिक्षा के युग में जरूर स्त्री और पुरुष दोनों ही शिक्षा में आगे बढ़े हैं और कई क्षेत्रों में दोनों ही कंधे से कंधा मिलाकर चल रहे हैं। विज्ञान, प्रौद्योगिकी, चिकित्सा सभी क्षेत्रों में नारियों ने योगदान दिया है किन्तु जिस प्रकार उनको प्रताड़ित और अपमानित किया जाता है किसी भी दृष्टि से सही नहीं है। आज अवश्य ही नारियां ऊंचे-ऊंचे ओहदे पर पहुंच गयी हैं किन्तु आज भी इस पुरुष प्रधान समाज में वे असुरक्षित हैं। आज हर चीज के विज्ञापन में चाहे वह पुरुष के ही उपयोग की वस्तु क्यों न हो, स्त्री को लाकर खड़ा किया जाता है। इन्हें चीज और वस्तु के रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है। निश्चित ही कुछ स्त्रियां प्रलोभन में पड़कर अपने बदन की नुमाइश करने को तैयार हैं किन्तु उनका इस्तेमाल करने वाला पुरुष प्रधान समाज ही है।

इस शिक्षा के युग में भी नारियां बलात्कार और हिंसा का शिकार हो रही हैं। हर दिन समाचार पत्रों और टी.वी. चैनलों के माध्यम से ऐसे दो-चार घटनाएं सुनने को मिल ही जाती हैं जो कि सोचनीय हैं। समाज के एक वर्ग का इस प्रकार अपमान और दुर्व्यवहार करके क्या सुन्दर और स्वस्थ समाज की रचना की जा सकती है।

भ्रूण हत्या एक भयंकर पाप है और यह आज के शिक्षित और सभ्य समाज में बड़े ही सभ्य ढंग से चल रहा है और इसमें कन्याभ्रूण हत्या हो रही है यह तो अति दयनीय है। एक सर्वेक्षण द्वारा यह पता चला है कि अकेले भारत में ही 40 लाख भ्रूण हत्या प्रतिवर्ष हो रही है। यह आकड़ा तो जो प्रकाश में आया है वह है, और न जाने कितना होता होगा।

भारत में तो कुछ प्रांतों में स्त्रियों की संख्या में लगातार गिरावट आ रही है। कहीं-कहीं तो प्रति हजार पुरुषों में सात सौ स्त्रियों से भी कम की संख्या हो गयी है। कुछ वर्ष पहले गुजरात के सौराष्ट्र क्षेत्र में जाना हुआ। वहां एक गांव में कुछ युवा लड़के मिलने के लिए आये। बातचीत के दौरान मैंने उनसे पूछा—आप लोगों की शादी हो गयी है, तो उन लोगों ने कहा, नहीं हुई है। मैंने पूछा—क्यों? तो उन्होंने कहा—साहेब इधर लड़कियों की संख्या कम है। मैंने पूछा—आपके गांव में कितने लड़के कुंवारे हैं तो उन लोगों ने कहा—25 से 35 वर्ष के उम्र वाले करीब तीस लड़के हैं, जिनकी शादी नहीं हुई है। मुझे सुनकर आश्चर्य लगा। यदि यही स्थिति रही तो आगे समाज का क्या भविष्य होगा। कुछ कहा नहीं जा सकता।

आज के शिक्षित और सभ्य युग में भी लोग नारियों को दहेज के नाम पर प्रताड़ित करते हैं। कभी-कभी तो तलाक और हत्या तक हो जाती है। बुद्धिजीवी वर्ग के लोग सोचते थे कि शिक्षा के विकास के साथ दहेज प्रथा जैसी कुरीति बिल्कुल समाप्त हो जायेगी। लेकिन यह तो और भी भयावह रूप ले चुकी है जो कि दुर्भाग्यपूर्ण है।

3. प्राकृतिक समस्या—आज विकास के नाम पर हमने प्रकृति को बहुत अधिक क्षति पहुंचाई है जिसकी वजह से प्रकृति में असंतुलन की स्थिति पैदा हो गयी है। हमने अपने सुख-सुविधाओं और आराम के लिए प्रकृति का अंधाधुंध उपयोग या कहिए दुरुपयोग शुरू किया है। जिसकी वजह से आज जल प्रदूषण, थल प्रदूषण, वायु प्रदूषण आदि की समस्या पैदा हो गयी है। पूरे विश्व के मनीषी परेशान हैं कि यही स्थिति बनी रही और हमने अपने आप में सुधार नहीं किया और प्रकृति के असंतुलन को नहीं रोक पाये तो हमारा भविष्य क्या होगा।

कारखानों, गाड़ियों और अन्य आधुनिक यंत्रों से उत्सर्जित कार्बन से हमारे वायुमण्डल को क्षति पहुंची है और ओजोन परत फट रहा है जिसकी वजह से पृथ्वी का तापमान बढ़ रहा है और ऋतुओं में भी अनियमितता हो रही है। बड़ा ही खतरनाक संकेत है।

हम इस प्रकार प्राकृतिक संसाधनों का दोहन और उपयोग कर रहे हैं मानो कि हमारे अलावा और कोई होंगे ही नहीं। हमें अपनी नयी पीढ़ी के बारे में भी कुछ सोचकर चलना चाहिए और यथासंभव प्रकृति के संरक्षण में योगदान देना चाहिए।

4. शारीरिक समस्या—आधुनिक विकास के चलते सुख-सुविधा होने के कारण आदमी शारीरिक रूप से आलसी और पंगु होता जा रहा है। आधुनिक साधनों से जितना सुख लगता है, जितनी सुविधा मिलती है उतना ही दुख और असुविधा होने लगती है बल्कि कहें इनके चलते मनुष्य अधिक असहाय और निरुपाय होता जा रहा है क्योंकि संसाधनों के चलते शारीरिक श्रम कम होता जा रहा है और बीमारियां बढ़ती जा रही हैं। जो आदमी मीलों पैदल चल लेता था आज खाली हाथ एक दो कि.मी. चलना भी कठिन जान पड़ता है। सत्तर और अस्सी वर्ष की उम्र तक लगातार परिश्रम करने वाला आदमी आज युवावस्था में ही असक्त और आलसी होता जा रहा है। ठंडी, गर्मी और बरसात, सबको सहकर सहज जीवन जीने वाला आदमी थोड़ी-सी प्रतिकूलता में रोगग्रस्त होता जा रहा है।

आज रासायनिक खाद और दवाइयों के बल पर कृषि उत्पादन तो बढ़ा है किन्तु इनके उपयोग से मनुष्य को अनेकानेक शारीरिक रोगों का सामना करना पड़ रहा है। मीडिया और अखबार के माध्यम से तो यह देख ही चुके होंगे कि किस प्रकार लोग फसलों में खाद और दवाई का प्रयोग करते हैं और यह कहां तक हमारे शरीर के लिए उपयोगी रह सका है। कुछ दिन पहले एक मां के दूध का लेबोरेटरी में परीक्षण किया गया तो पता चला कि दूध में बहुत अधिक मात्रा में कीटनाशक दवाई है जो बच्चे और मां दोनों के स्वास्थ्य के लिए खतरनाक था। एक वर्ष पहले भारत से बाहर जाने वाले आम फल पर परीक्षण किया गया तो उसमें अधिक मात्रा में रासायनिक दवाइयों का अंश पाया गया और उसे खाने के अयोग्य ठहरा दिया गया। ऐसे ही चीजों को हम खा-पी रहे हैं तो फिर अच्छा स्वास्थ्य कैसे हो सकता है।

आजकल आधुनिक विकास के चलते सब कुछ प्रदूषित होता जा रहा है और हम उन्हीं प्रदूषित चीजों को ग्रहण कर रहे हैं तो अच्छे स्वास्थ्य की कल्पना कैसे की जा सकती है। लोग अपने को आज के विकास की दौड़ में बनाये रखने के लिए मिलावटी और नकली माल बड़े ही धड़ल्ले से बेच रहे हैं। नकली दूध, नकली चावल, इन्जेक्शन लगी सब्जी, नकली दवाई आदि का प्रयोग या तो हम अनजान में कर रहे हैं या मजबूरी से और इससे स्वास्थ्य को कितना नुकसान पहुंचता है किसी से छुपा नहीं है।

5. मानसिक समस्या—आज भौतिक संसाधनों का विकास जरूर हुआ है किन्तु मानसिक समस्या का भी विकास हुआ है। आजकल तनाव, उलझन और उत्तेजना में आदमी बहुत जल्दी आ जा रहा है। मानसिक रोगियों की संख्या बहुत ज्यादा बढ़ रही है। स्वाभाविक-सी बात है आधुनिक संसाधनों को देखकर उसे प्राप्त करने के लिए प्रयत्न करता है। मेहनत-मजदूरी करता है। सही तरीके से नहीं प्राप्त कर पाता तो गलत तरीके अपनाता है फिर भी अपनी इच्छा को पूरी नहीं कर पाता तो वह तनाव से घिर जाता है। आज के कम्पीटीशन के दौर में बड़े तो बड़े छोटे-छोटे पढ़ने वाले स्कूली बच्चे तनावग्रस्त होते जा रहे हैं। अपेक्षा और आकांक्षा इतनी बढ़ती जा रही है कि आदमी लाख कोशिश करने के बाद भी उसे पूरा नहीं कर पा रहा है और इसके चलते तनाव, बेचैनी, अनिद्रा, पेट और मस्तिष्क के रोगों से ग्रस्त होता जा रहा है और इसी वजह से आजकल आत्महत्या की घटनाएं बहुत अधिक हो रही हैं जो कि हमारे भौतिक विकास का एक तरह से परिहास है। आदमी थोड़े-थोड़े में उत्तेजित और उग्र बनता जा रहा है। सहिष्णुता और शालीनता घटती जा रही है। मानसिक स्वस्थता ही नहीं रह पायी है तो फिर और क्या आशा की जा सकती है। आजकल हिंसा, हत्या की घटनाएं इसका परिणाम है।

6. पारिवारिक समस्या—जब लोग मानसिक तनाव से घिरे रहेंगे तो फिर आपसी सम्बन्धों का सहजतापूर्वक निर्वाह कैसे कर पायेंगे। आज माता-पिता और बड़े बुजुर्गों की कद्र होने की बात तो दूर, पति-पत्नी के बीच में ही तनाव और कलह देखा जाता है और आये दिन थोड़ी-थोड़ी बातों में तलाक, टूटन, हिंसा-हत्या जैसी घटनाएं होती रहती हैं। आज मनुष्य आपसी प्रेम और विश्वास के बदले भोगवादी प्रवृत्ति को बढ़ावा दे रहा है और स्वार्थ में धक्का लगते ही सारी सीमाओं को तोड़कर वह सब कुछ कर जाता है जो नहीं करना चाहिए। भोगवादी प्रवृत्ति ने परिवार और समाज को तोड़कर रख दिया है और आदमी अपने ही घर-परिवार में उपेक्षित और तिरस्कृत जीवन जीने को मजबूर हो गया है।

एक मां ने अपनी आप बीती सुनाई कि साहेब मेरा एक ही लड़का है और उसने प्रेम विवाह किया है। लड़की अमीर घर की है। घर में आते ही उसने नखरे शुरू कर दिये और कुछ ही दिन में कहने लगी कि मां, तुम मुझे अच्छी नहीं लगती हो, चाहे तुम जहां जाओ किन्तु यहां न रहो। क्या करूं साहेब, बेटा तो चाहता है किन्तु बहू के सामने उसका एक नहीं चलता है। उस माता का पति पहले से ही मर चुका है और उसने बड़े ही जतन से अपने बच्चे को पाला लेकिन अब वह घर से बाहर रहने को मजबूर है। कहती थी मैं वृद्धाश्रम में चली जाऊंगी या कोई मठ-मंदिर में चली जाऊंगी किन्तु उस घर में नहीं जाऊंगी। सोचिये, उस मां की मनःस्थिति क्या होगी?

वास्तव में यह विकास है या विनाश। हम दिखने में तो आधुनिक और सभ्य हो गये हैं, शिक्षित और होशियार हो गये हैं। भौतिक ऐश्वर्य और आधुनिक साधनों से सम्पन्न हो गये हैं किन्तु सही तौर पर देखा जाये तो हम अन्दर से उतने ही अकिंचन और दरिद्र हो गये हैं। हमारे अन्दर दया, प्रेम, करुणा और सेवा-सहयोग की भावना समाप्त होती जा रही है। प्रसन्नता, आनंद और शांति गायब होती जा रही है। यदि यह बात सही है तो कौन-सा विकास? कैसा विकास? कहां का विकास? इससे तो अच्छा वही अविकसित युग ही था। कम से कम उस समय शांति और सुकून तो था।

ऊपर जितनी समस्याओं की चर्चा की गयी है, इसी तरह और भी समस्याएं हैं जिनके लिए हम वर्तमान के परिवेश और आज के भौतिक विकास को कारण बताते हैं। वास्तव में एक तरह से देखा जाये तो यह है भी किन्तु क्या ऐसे सोच या मानकर हम समस्याओं से मुक्त हो सकते हैं? नहीं। वर्तमान में चाहे जैसी परिस्थितियां बन रही हों उसमें हम एकाएक परिवर्तन नहीं ला सकते, किन्तु अपनी मानसिकता में, अपनी सोच में परिवर्तन लाकर समस्याओं से निजात पा सकते हैं। क्योंकि अन्तर्दृष्टि से विचारकर देखा जाये तो चाहे जितनी ही बड़ी और भयावह समस्या क्यों न हो इन सबका एक मुख्य कारण अपना यह मन है। हम इच्छा और वासना बढ़ाकर नाना प्रकार की समस्याओं को पैदा करते हैं। इससे खुद तो दुखी होते ही हैं औरों के लिए भी दुख का कारण बनते हैं।

चाहे जो भी समस्याएं हों, कहीं-न-कहीं केन्द्र में हमारा मन ही है। इसलिए हम इन समस्याओं से मुक्त होने के लिए मन को ही केन्द्र में रखकर प्रयास करेंगे तो निश्चिन्त ही हम उन सभी समस्याओं से मुक्त हो सकते हैं जिनसे आज सारा समाज परेशान है।

यदि आदमी अपनी इच्छा में संयम कर ले तो सारी समस्याओं का समाधान हो सकता है। हमारी इच्छाओं और वासनाओं पर संयम नहीं है इसीलिए तो आर्थिक, सामाजिक, प्राकृतिक, शारीरिक, मानसिक, पारिवारिक और न जाने क्या-क्या समस्याएं पैदा हो रही हैं और हम इन समस्याओं में उलझते जा रहे हैं।

यदि इच्छाओं पर संयम हो और उचित दिशा में उचित पुरुषार्थ करें तो आर्थिक समस्या समाप्त हो जायेगी। हम आलसी और अकर्मण्य न बनें बल्कि विवेकपूर्वक संकल्प के साथ काम करते चलें तो जो हमारी आवश्यकता है वे तो पूरी होंगी ही और भी जीविकोपयोगी साधन प्राप्त हो ही जायेंगे और हम सुखी और संतुष्ट हो सकेंगे।

एक बात हमेशा दिमाग में बैठा लेना चाहिए कि धन हमारे लिए है हम धन के लिए नहीं हैं। धन साधन है साध्य नहीं है। और यदि हम इसका साधन के रूप

में उपयोग करेंगे तो वास्तव में हमारे अन्दर धन का भूत सवार नहीं होगा और जितना भी परिश्रम से प्राप्त होगा हम खुश रह सकेंगे।

यदि हम अपनी इच्छाओं पर संयम करके दूसरों की भावनाओं की कद्र करना शुरू कर दें तो सामाजिक समस्याओं का समाधान हो सकेगा। हम दूसरों से क्या अपेक्षा रखते हैं? ठंडे दिमाग से सोचें। हमें दूसरों से सेवा-सहयोग की आशा होती है न, बस हम यही करने लग जायें। प्रकृति में जो भी दिया जाता है वही हमें कई गुणा होकर प्राप्त होता है। और जो देते हैं वही हमें मिलता है। बबूल बोकर आम की आशा करना मूर्खता है और यह कभी पूरी नहीं हो सकती है। इसलिए दूसरों की भावनाओं की कद्र करके, सेवा-सहयोग की भावना रखकर हम खुद अपने लिए वैसे वातावरण का निर्माण कर सकते हैं इससे दूसरे तो खुश होंगे ही हमें भी प्रसन्नता और आनंद की प्राप्ति होगी और आगे चलकर सेवा-सहयोग प्राप्त हो सकेगा।

यदि हम अपने आने वाली पीढ़ी के भविष्य के बारे में सोचें और समझें कि इस प्रकृति पर सबका अधिकार है, इसको नुकसान पहुंचाकर न हमारा भला है न औरों का, तो केवल भौतिक सुख-सुविधाओं के चक्कर में जो प्राकृतिक समस्याएं हम खड़ी कर रहे हैं इनका समाधान हो सकता है। लोग सोचने लगते हैं कि अरे, हमारे एक के करने से क्या होगा। सभी लोग तो विपरीत कर रहे हैं किन्तु दूसरे भी यही सोचते हैं, हमारे एक के करने से क्या होगा। यदि एक-एक की भी सोच बदलने लगे और हम प्रकृति का सम्मान करने लगें तो निश्चित ही प्राकृतिक समस्याओं का समाधान हो सकेगा।

यदि हमारे मन पर संयम हो जाये और हम शरीर की प्रकृति पर ध्यान दें और उचित आहार-विहार रखते हुए समय से शारीरिक परिश्रम या व्यायाम आदि करते रहें तो हमारा शरीर स्वस्थ रह सकता है। हमें निरंतर गतिशील और परिश्रमी रहने के लिए सूर्य से प्रेरणा लेनी चाहिए। देखिये वह निरंतर गतिशील है, कभी आलस नहीं करता, सबको प्रकाश देता है इसलिए वह जगत वन्दनीय है। हम केवल भौतिक संसाधनों के एकदम गुलाम ही न हो जायें जैसे ए.सी. या पंखा हो तभी चलेगा। कहीं दो-चार कि.मी.भी चलना हो तो भी गाड़ी-मोटर ही चाहिए। ऐसा करके हमें भले ही लगता है कि हम एक स्टेटसदार आदमी हैं किन्तु इससे हम शारीरिक और मानसिक रूप से कमजोर और बीमार ही होते जाते हैं इसलिए हमें इन संसाधनों के बगैर भी रहने और चलने का अभ्यास करना चाहिए। इससे हमारा शरीर स्वास्थ्य तो अच्छा होगा ही हमारा मन भी मजबूत होगा।

जो भी अन्न, सब्जियां और दवाई आदि का हम प्रयोग करते हैं उसको लेने और प्रयोग करने में सावधानी रखें। यदि बुद्धिजीवी वर्ग और समाज के अगुवा लोग इसके लिए समाज में पहल करें तो निश्चित ही जो अधिक दवाई और खाद आदि से अन्नादि दूषित हो रहे हैं उसे रोका जा सकता है।

मानसिक समस्या से निजात पाने के लिए मनुष्य को भौतिक विकास के साथ ही आध्यात्मिक उन्नति का भी काम करना चाहिए। सत्संग और सद्ग्रंथ का आधार लेकर अपने मन को मांजना चाहिए। अधिकारी संत-गुरुजन का आधार लेकर यदि हम इस पथ पर चलेंगे तो हमारी भौतिक प्रगति बाधित तो होगी नहीं अपितु हमारा मन शांत और तनाव रहित हो जायेगा।

वास्तव में सारी समस्याओं के केन्द्र में हमारा मन है। यदि हम इस एक मन को संयमित और सजग बना लें तो दुनिया में जो भी समस्याएं पैदा हो रही हैं उनका समाधान सहज रूप से हो सकता है। सद्गुरु कबीर की साखी मननीय है—

एक साधे सब साधिया, सब साधे एक जाय।
जैसा सींचे मूल को, फूले फले अघाय॥

(बीजक)

यदि हमें अपने में संयम रखने की कला आ जाये तो हम दूसरों के साथ, प्रकृति के साथ अति नहीं करेंगे। और इससे हम तो शांत और सुखी होंगे ही और लोग भी अच्छा महसूस करेंगे और हम ऐसा करके औरों के लिए प्रेरणास्रोत बन सकेंगे।

❑

व्यवहार वीथी

क्या, क्यों और कैसे खायें?

दुनिया में कोई भी प्राणी बिना खाये जीवित नहीं रह सकता। जीवित रहना है और स्वस्थ होकर जीना है तो खाना पड़ेगा। बिना कुछ खाये नहीं चलेगा। दिन भर हम जो कुछ करते रहते हैं उससे हमारे शरीर की ऊर्जा की खपत होती रहती है। हर समय हमारे शरीर की ऊर्जा-शक्ति व्यय होती रहती है। इसकी पूर्ति के लिए खाना मजबूरी है। चार-छह दिन न खायें तो शरीर शिथिल हो जायेगा, सारी इंद्रियां जवाब दे देंगी, स्मरण-शक्ति कमजोर हो जायेगी।

उपनिषद् में कथा आती है कि गुरु ने एक शिष्य को बुलाकर कहा कि जाओ एक सप्ताह उपवास करो और तब मेरे पास आओ। एक सप्ताह उपवास करने के पश्चात शिष्य जब गुरु के पास आया तब गुरु ने उसे वेद-पाठ करने का आदेश दिया। शिष्य ने कहा—गुरुदेव। एक सप्ताह के उपवास से पूरा शरीर शिथिल हो गया है, स्मरणशक्ति साथ नहीं दे रही है, अतः वेद पाठ करना कठिन है। तब गुरु ने कहा—जाओ, भोजन करो और भोजन के बाद विश्राम कर मेरे पास आओ। भोजन-विश्राम के पश्चात शिष्य जब गुरु के पास आया तब गुरु ने पुनः उसे वेद-पाठ करने का आदेश दिया। आदेश पाकर शिष्य सस्वर वेद-पाठ करने लगा। तब गुरु ने कहा—बेटा! एक सप्ताह भोजन न करने से तुम्हारा शरीर शिथिल हो गया था और स्मरणशक्ति कमजोर पड़ गयी थी, अब भोजन करने से सब कुछ ठीक हो गया और तुम सस्वर वेद-पाठ करने लग गये। अतः सदैव याद रखना—अन्नं ब्रह्म। अन्न ही ब्रह्म है। इसकी अवहेलना न करना। न ज्यादा खाना और न बहुत कम खाना। ज्यादा खाना भी अन्न की अवहेलना करना है और बहुत कम खाकर शरीर को शिथिल कर देना भी अन्न की अवहेलना करना है।

जो भी खायें और जब भी खायें क्षुधा-पूर्ति के लिए खायें, स्वाद के चक्कर में पड़कर न खायें। स्वाद के चक्कर में पड़कर खायेंगे तो जरूर ज्यादा खायेंगे और गलत खायेंगे। ज्यादा और गलत खाना सदैव अहितकर होता है। यह अपने साथ ही अपराध करना है, अपने तन-मन दोनों को बिगाड़ना है, दूषित करना है। वस्तुतः भोजन भूख-रोग की दवा है। अतः भोजन को दवा समझकर खायें। जो आदमी अपने भोजन को ही दवा बना लेता है, भोजन को दवा के समान खाता है वह तन-मन के अनेक रोगों से अपने को बचा लेता है। चूंकि बिना खाये जी नहीं सकते, अतः जो खायें जीने के लिए खायें। खाने के लिए न जीयें। कोई भी जानवर कभी खाने के लिए नहीं जीता, सदैव जीने के लिए ही खाता है। सिर्फ आदमी ही ऐसा प्राणी है कि बहुत-से लोग खाने के लिए ही जीते हैं। उनके जीवन का एकमात्र उद्देश्य होता है पेटभर खाना और जायज-नाजायज ढंग से छककर भोगों को भोगना। ऐसे लोगों को आदमी कहना आदमियत का अपमान करना है।

चिंता, तनाव, भय रहित होकर शांत-प्रसन्न मन से धीरे-धीरे खूब चबाकर खायें। जल्दी-जल्दी और हड़बड़ी में न खायें। चिंता, तनाव, भय, क्रोध की स्थिति में खाना शरीर-स्वास्थ्य के लिए कभी हितकर नहीं होता, क्योंकि इस समय शरीर से ऐसे रसायन निकलते हैं जो खाये हुए भोजन को जहरीला बना देते हैं। अतः चिंता, तनाव, भय एवं क्रोध की हालत में कभी न खायें। ऐसी हालत में खाने की अपेक्षा न खाना ज्यादा अच्छा है। जल्दी-जल्दी और हड़बड़ी में बिना ठीक से चबाये खाने से ठीक से उसका पाचन नहीं होता और उसका रस-रक्त में रूपांतरण न होने से वह शरीर के लिए लाभकारी नहीं होता। अतः जब भी खायें शांत-प्रसन्न मन से धीरे-धीरे खूब चबाकर खायें। भोजन को इतना चबाना चाहिए कि वह पीसकर मुंह में ही द्रव रूप में हो जाये और उसे निगलने के लिए प्रयास न करना पड़े। भोजन को ठीक से चबाने से उसमें लार का अच्छी तरह मिश्रण हो जाता है और उसका सही ढंग से पाचन होता है। उसको पचाने के लिए आंतों को अधिक मेहनत नहीं करनी पड़ती।

धीरे-धीरे चबाकर खाने से थोड़े भोजन से पेट भर जाता है और तृप्ति का अनुभव होता है। इसके विपरीत जल्दी-जल्दी खाने से ज्यादा खा लिया जाता है। याद रखें, जल्दी-जल्दी और ज्यादा खाने का मतलब है जल्दी मौत को बुलाना। यथासंभव टी.वी. देखते हुए, अखबार पढ़ते हुए, रास्ता चलते हुए, बात करते हुए न खायें, क्योंकि इससे यह पता नहीं चलेगा कि आप कितना खा लिये हैं और अनजाने में आप ज्यादा खा जायेंगे और साथ ही आप बिना ठीक से चबाये खाते जायेंगे जो आपके लिए नुकसानदेह होगा। इसलिए जितना संभव हो बैठकर खायें और प्रसन्न मन से धीरे-धीरे खायें। यदि संभव हो तो थाली में उतना ही भोजन लें जितना आप आराम से खा सकते हैं और जितने से आपकी भूख मिट सकती है। यदि थाली में परोसा हुआ भोजन आ रहा है तो जो ज्यादा लगे और जो आपके लिए हितकर न हो उसे पहले से अलग निकाल दें और यदि पहले से अलग निकालना संभव न हो तो पहले ही यह निर्णय कर लें कि आपको क्या और कितना खाना है। जो ज्यादा और गलत लगे उसे छोड़ दें, संकोच में पड़कर न खायें।

बार-बार न खायें। चौबीस घंटे में दो या तीन बार ही खायें। बहुत-से लोग तो एक बार ही खाते हैं। उन्होंने वैसा अभ्यास बना लिया है। चाहे दो बार खायें या तीन बार, हर बार उतना ही खायें कि अगली बार जब खाने का अवसर आये तब तक खुलकर भूख लग जाये। बिना भूख के न खायें। बिना भूख के खाना एक प्रकार से जहर खाना है। जानवर बिना भूख के नहीं खाता और न ज्यादा खाता है, इसलिए प्रायः स्वस्थ रहता है। आदमी ही है जो बिना भूख के खाता है, ज्यादा खाता है और गलत खाता है इसलिए ज्यादा अस्वस्थ रहता है। यदि इन तीनों से अपने को बचा लिया जाये तो अनेक बीमारियों से स्वतः बचा जा सकता है।

यथासंभव निश्चित समय पर खायें। निश्चित समय पर खाने से आंतों से पाचक रस का स्राव निश्चित समय पर होता है और खाये हुए भोजन का ठीक से पाचन होता है। बार-बार और अनिश्चित समय पर खाते रहने से पाचक रस का स्राव होना बिगड़ जाता है, जिससे खाया भोजन ठीक से नहीं पचता और भोजन ठीक से न पचने से शौच साफ नहीं हो पाता, जिससे पेट में कब्ज रहने लगता है और सब जानते हैं कि अनेक रोगों का मूल कारण कब्ज ही होता है। इसलिए एक निश्चित समय पर खायें, सुपाच्य और संतुलित खायें।

क्या खाते हैं और कितना खाते हैं यह महत्त्वपूर्ण नहीं है किन्तु महत्त्वपूर्ण यह है कि कैसे खाते हैं और कितना पचाते हैं। भय, चिंता, तनाव, दुख एवं क्रोध-उत्तेजना की स्थिति में जो भी खायेंगे उससे पेट तो भर जायेगा, परंतु वह शरीर-स्वास्थ्य के लिए कभी हितकर नहीं होगा। इस भ्रम में भी न रहें कि अधिक मात्रा में घी, दूध, मेवा, मलाई आदि पौष्टिक चीजें खाने से शरीर को अधिक ताकत मिलेगी, क्योंकि इनमें ज्यादा विटामिन-प्रोटीन होते हैं। यदि आंतें कमजोर हैं, पेट की पाचन प्रणाली ठीक नहीं है तो घी, दूध, मेवा, मलाई पौष्टिक चीजें तन-मन दोनों के लिए हानिकारक ही होंगी, क्योंकि इनका ठीक से पाचन नहीं होगा। इसके विपरीत यदि आंतें सबल हैं, पाचन प्रणाली दुरुस्त है तो प्रसन्न मन से सूखी रोटी खाने पर भी शरीर स्वस्थ रहेगा और शरीर को ज्यादा ताकत मिलेगी। इस बात का सदैव ध्यान रखें कि आप जो भी खा रहे हैं उसका ठीक से पाचन हो रहा है या नहीं। जितने का ठीक से पाचन होता है वह आप अपने लिए खा रहे हैं, बाकी डॉक्टर-वैद्य के लिए खा रहे हैं।

जो खायें वह या तो अपने परिश्रम से उपार्जित हो या किसी द्वारा श्रद्धा-प्रेम से दिया गया हो। किसी का हक मारकर, किसी की खुराक छीनकर कभी न खायें। किसी का हक मारकर, खुराक छीनकर खाने में तत्काल लाभ तो दिखेगा परंतु ऐसा खाना कभी हितकर नहीं होगा। इससे तन-मन दोनों दूषित होंगे। सद्गुरु कबीर की ये साखियां सदैव याद रखें—

खुश खाना है खिचड़ी, माहिं पड़ा टुक लौन।
मांस पराया खाय के, गरा कटावै कौन॥

सहजै आवै माल मलीदा, माँगे मिले सो पानी।
कह कबीर वह रक्त बराकर, जामें ऐंचातानी॥

किसी का हक मारकर, खुराक छीनकर खाना उसका रक्त पीना और मांस खाने के बराबर है। इसलिए सदैव अपनी कमाई का ही खायें। परिश्रमपूर्वक प्राप्त सूखी रोटी, छीनकर या किसी का हक मारकर प्राप्त मेवा-मलाई, हलुवा-पूड़ी से हजार गुणा बढ़कर है।

परिश्रमपूर्वक अपनी कमाई का तो खायें ही बांटकर भी खायें। स्वयं तो खाना पड़ेगा ही, क्योंकि बिना खाये जीवित नहीं रह सकते, साथ-साथ उनको भी खिलायें जो भूखे हैं, असहाय, अनाथ हैं। अपना पेट तो सभी भर ही लेते हैं, मजबूरी है, विशेषता तो उनकी है जो औरों को भी खिलाते हैं। सद्गुरु कबीर कहते हैं—

जो तू आया जगत में, तो ऐसा करि लेय।
कर साहेब की बंदगी, भूखे को कछु देय ॥

जो दूसरों को न खिलाकर केवल अपना पेट भरता है वैदिक ऋषियों की दृष्टि में वह आदमी असावधान है और उसका खाना पाप खाना है। ऋषि कहते हैं—

मोघमन्नं विन्दते अप्रचेताः सत्यं ब्रवीमि वध इति स तस्य।
यो नार्यमणं पुष्यति नो सखाया केवलाघो भवति केवलादी॥

(ऋग्वेद)

जो असावधान है उसका अन्न खाना व्यर्थ है। मैं सत्य कहता हूं कि वह अपना वध कर रहा है। जो न सज्जनों को खिलाता है और न मित्रों को, केवल स्वयं खाता है वह केवल पाप खाता है।

जो व्यक्ति नीति-नियमपूर्वक अपने परिश्रम की कमाई खाता है या दूसरों द्वारा श्रद्धा-प्रेम से दिया हुआ खाता है, बांटकर खाता है, भोजन को दवा समझकर खाता है, सदैव सात्त्विक, सुपाच्य और संतुलित खाता है वह तन-मन दोनों से स्वस्थ रहकर प्रसन्नतापूर्वक जीवन जीता है।

—धर्मेन्द्र दास

पारख सिद्धान्त

रचयिता—राधाकृष्ण कुशवाहा

सद्गुरुदेव कबीर का, खरा जो अद्भुत ज्ञान।
उसी से दिन-दिन बढ़ रहा, पारख पंथ की शान॥

पंथ पंथ भटकत फिरा, लेकर बहुत भरोस।
लेकिन ज्ञान-पिपासु ने, पारख पाया तोष॥

यह मिशाल तो खूब है, अन्य से पारख आय।
ऐसा बिरले ही मिले, जो पारख से जाय॥

यहाँ देव कोई नहीं, जो सुख मोक्ष को देत।
जीवन के सब पाप दुःख, को क्षण में हर लेत॥

मान मनौती कुछ नहीं, यहाँ हैं आत्म-सुधार।
निज को है गढ़ना सदा, लेकर गुरु आधार॥

चाकचिक्य से हीन यह, शुष्क ज्ञान ठहराय।
सत्य ज्ञान भावे जिसे, वही यहाँ टिक पाय॥

छल-प्रपंच अरु झूठ का, होता यहाँ विरोध।
दोष-त्याग अरु आत्म का, चलता रहता शोध॥

बाहर भटकत युग गया, मन का फेर न जाय।
अपने में लौटे बिना, कोई नहीं उपाय॥

आत्म का शोधन मुख्य है, त्याग सभी हो शेष।
अब कुछ पाना है नहीं, यह गुरु का उपदेश॥

स्वयं यत्न से सब मिले, सद्गुरु संत सहाय।
दोष कामना त्याग से, आत्म लीनता आय॥

आत्म लीनता ही यहाँ, पारख पद की राह।
बदले तन जब इस दशा, भव चक्कर मिट जाय॥

शब्द विचारी जो चले, गुरुमुख होय निहाल।
काम क्रोध ब्यापै नहीं, कबूँ न ग्रासै काल॥
ज्ञानी भूले ज्ञान कथि, निकट रहा निजरूप।
बाहिर खोजै बापुरे, भीतर वस्तु अनूप॥
आतम अनुभव जब भयो, तब नहिं हर्ष विषाद।
चित्र दीप सम ह्वै रहै, तजि कर वाद विवाद॥

—कबीर साखी

साधना पथ में सावधानी

लेखक—भूपेन्द्र दास

1. शरीर का एक प्राकृतिक नियम है कि इससे विकार निकलते ही आराम मिलता है। मन आराम महसूस करता है। जैसे मल-मूत्र के निष्कासन से पेट आराम महसूस करता है ऐसे ही साधक (साधु) के जीवन से संपूर्ण विकारों का जब खातमा हो जाता है तब मन महा विश्राम का अनुभव करता है। (त्यागात् शांतिः अंतरम्)

2. दीवार पर छेद करते समय ड्रील-मशीन (छेद करने वाली मशीन) तेज कंपन (Vibrate) होने के कारण बार-बार उस निश्चित जगह से खिसक जाती है। ड्रीलिंग करने वाला उसे बारंबार निश्चित जगह पर रखता है और जितना गहरा चाहिए छेद कर लेता है। ऐसे ही मन जब साधना से विमुख होने लगे तो साधक का काम है उस भटके हुए मन को बारंबार साधना में लगाते रहना और परम शांति का अनुभव करना।

3. लोहार लोहा को पहले ठीक से गरम करता है, फिर उसे हथौड़ी से खूब पीटता है। लोहा शांत सहता रहता है तब कहीं उसे ठंडा पानी में डालता है। साधक का काम है थोड़ी परेशानी, कठिनाई अथवा थोड़ी प्रतिकूलता से घबराये न। कुछ बनने के लिए विषम परिस्थितियों का सामना करना ही पड़ता है। कष्टों को सहना ही पड़ता है।

4. लोग प्रायः कहा करते हैं महाराज, काफी दिन हो गये साधना, तपस्या करते हुए पर आज तक न तो शांति मिली और न ही परमात्मा। उनके जीवन को झांका जाता है तब पता चलता है कि साधना में तो लगे हैं किंतु प्रमादवश उनके ग्रहण करने, सीखने की प्रक्रिया ही गलत हो गयी है। साधनोपयोगी तीन शब्द हैं—परीक्षा, समीक्षा, प्रतीक्षा। प्रत्येक साधक को परीक्षा करनी चाहिए। संसार की परख करके मोह-माया का विवेकपूर्वक विचार करते हुए उससे उपरत होना चाहिए। समीक्षा का मतलब होता है अपने गुण-दोषों का विचार करना और दोषों का त्याग करते रहना। प्रतीक्षा से आशय है इंतजार, धैर्य। गुरु या परमात्मा (शांति) को उतावलेपन से प्राप्त नहीं किया जा सकता। धैर्यपूर्वक साधना करते हुए, गुरु की उपासना करते हुए गुरुत्व को पाया जाता है। शांति को उपलब्ध हुआ जाता है। यह प्रक्रिया है किन्तु साधक उलटा करता है। परीक्षा करता है गुरु की। गुरुजी कितने गहरे पानी में हैं, कौन-कौन से दोष हैं। समीक्षा करता है संतों की और प्रतीक्षा कराना चाहता है अपनी। मैं बड़ा संत हूं। यही अहंकार साधना-पथ में बाधा डालता है। इसीलिए शांति नहीं मिलती।

5. हम संसार की परीक्षा (परख) कर सुख-दुख, हानि-लाभ, मोह-माया का विश्लेषण कर दुनिया से उपरत हों, बंधनों का त्याग करते रहें। अपने गुण-दोषों की परख करें कि कौन-कौन से गुण मेरे जीवन में आ रहे हैं। और कौन-कौन से दोष शेष रह गये हैं। जो रह गये हैं उनका त्याग करें और धैर्यपूर्वक साधना करते हुए यह प्रतीक्षा करें कि धीरे-धीरे मेरे जीवन में शांति उतर रही है उस शांति का अनुभव करें। ऐसा व्यवहार बरतना साधना की सही दिशा में आगे बढ़ना है।

6. परमात्मा अथवा शांति का मार्ग एकतरफा रास्ता की तरह है जहां दूसरा नहीं चल सकता। इसी को सद्गुरु कबीर ने अपने शब्दों में कहा है "प्रेम गली अति सांकरी, जामें दो न समाय।" दुनिया का लोहा-लक्कड़, धन-दौलत का कबाड़, परिवार-कुटुंब का भार साथ में लेकर कोई मोक्ष रूपी महल में प्रवेश नहीं कर सकता। वहां तक पहुंचने के लिए पूरा निर्ग्रन्थ एवं नंगा मन होना चाहिए। शुद्ध एवं ग्रन्थिहीन मन ही समाधि में प्रवेश पा सकता है।

7. "हंस हंस कंत न पाइया"—सच्चा आनंद हलुआ, पूड़ी, खीर तथा नाना मेवा-मिष्ठान्न से प्राप्त होने वाला नहीं है। दुनिया के छप्पन भोगों में पड़कर तो रसासक्ति अथवा इन्द्रियों की आसक्ति ही प्रबल होती है। साधक (मुमुक्षु) का रास्ता 'अस्वाद' व्रत का है।

दुनिया से उदास-निराश, दुनिया के दुखों की याद करते रहना साधनामय जीवन के लिए टानिक है। मुमुक्षु के जीवन में बाहरी हंसी हो या न हो पर भीतरी प्रसन्नता सब समय होनी चाहिए। यही जीवन का असली आनंद है।

8. कहानी के अनुसार रामायण में भरत ने कहा—मुझे सिर्फ राम चाहिए। अयोध्या का राजवैभव, नवयुवती सुंदरी पत्नी, धन, साम्राज्य सब कुछ छोड़कर भरतकुंड में जाकर तपस्या किये, सिर्फ राम को पाने के लिए और एक दिन राम को पा गये। इसी प्रकार यदि हम साधक हैं तो क्या हमारा लक्ष्य सिर्फ और सिर्फ कल्याण है? यदि है तो क्या उसे प्राप्त करने के लिए परिश्रम कर रहे हैं। यदि ऐसा है तो कल्याण दूर नहीं है। और अगर साधक (संत) भी दुनियवी लोगों के जैसे—मोबाइल, इंटरनेट, वाट्सऐप और फेसबुक इत्यादि में दिन-रात खोया हुआ है तो सोचे क्या यही कल्याण की दिशा में अग्रसर होना है? यह तो वही रास्ता है जिस दुनिया को हम बाहर से छोड़कर गुरु के आश्रम में आये और फिर से उसी दुनिया को उससे भी भयंकर रूप में पकड़ लिये। मैं मानता हूं कि इन संसाधनों का जीवन में उपयोग है परन्तु साधना-पथ और साधक के लिए इन सबका प्रयोग नगण्य है। अतः साधक की सावधानी यही है कि सांसारिक बंधन देने वाले संसाधनों में समय बरबाद न करते हुए अपने मन को सिर्फ राम (कल्याण) में लगाये। नहीं तो, पुनः उसी संसार रूपी भवाटवी में भटकना पड़ेगा।

9. "भरत की साधना सिर्फ राम चाहिए।" यदि हम अपने को साधक मानते हैं तो हमारा भी यही लक्ष्य हो जाना चाहिए। कैकेयी ने भरत को अयोध्या की गद्दी देना चाहा पर न दे सकी। किन्तु राम से मिलने पर भरत को गद्दी अपने आप मिल गयी। हम भी राम (कल्याण) को पाने के लिए साधना करें। जिस दिन अपना कल्याण हो जायेगा उस दिन दुनिया के सभी लोग और सारा साम्राज्य हमें उपलब्ध हो जायेगा। किन्तु दुनिया को पाकर साधना नहीं की जा सकती। दुनिया के सभी महापुरुषों ने यही किया है। दुनिया को ठोकर मारकर ही आत्मज्ञान को उपलब्ध हुआ जा सकता है। मोह बढ़ाकर नहीं।

10. रास्ते पर कंकड़ ही कंकड़ हो तो भी एक अच्छा जूता पहनकर उस पर चला जा सकता है लेकिन जूता के अंदर एक भी कंकड़ हो तो अच्छी सड़क पर कुछ कदम चलना भी मुश्किल होता है अर्थात हम बाहर की चुनौतियों से नहीं बल्कि अंदर की कमजोरियों से हार जाते हैं। अतः हम भीतर से अपने सिद्धांत और साधना में इतना मजबूत बनें कि कोई भी परिस्थिति अथवा व्यक्ति हमको अपने पथ से विचलित न कर सके।

11. प्रत्येक साधक को सद्गुरु की शरण में ऐसे रहना चाहिए जैसे कि माता के गर्भ में बच्चा रहता है। साधक का कर्तव्य है सच्चे सद्गुरु की चरण-शरण में समर्पित होकर अपने जीवन को ज्ञान की आग में ठीक से पका ले, ठीक से साध ले तो गुरु के सहयोग स्वरूप आशीर्वाद से उसका जीवन कुंदन बन जायेगा।

12. कुम्हार जब बर्तन बनाता है तो सूखे हुए कच्चे बर्तनों को आंवे में पकाता है। कई दिनों तक अथवा महीने भर तक आंवा तपता है तब कहीं सामान ठीक से पक पाता है और उपयोगी बन पाता है। गुरु के पास शिष्य आते हैं, वे चाहते हैं कि गुरुजी हमें आशीर्वाद दे दे और हमें मुक्ति मिल जाये। लंबी साधना अथवा तपस्या न करना पड़े। यह कायरता काम नहीं आयेगी। जीवन को सफल बनाना है तो साधना के आंवें में अपने आप को तपाना ही पड़ेगा।

13. पानी किसी को डुबाता नहीं है बल्कि वह आदमी डूब जाता है जिसे तैरना नहीं आता। ऐसे ही यह संसार है। जो ज्ञानी होता है वह बोध, विचार, वैराग्य के बल पर संसार-सागर से तैर जाता है। बाकी लोग दुनिया के आकर्षण और प्रलोभन में पड़कर संसार-सागर में ऊबते-डूबते रहते हैं। इसलिए कहा गया है—सही दिशा में सही परिश्रम करने से परिणाम भी सही निकलता है।

14. प्रायः सभी लोग घड़ी देखते हैं। दिन में एक बार नहीं बल्कि कई बार देखते हैं। घड़ी देखते समय

हमारा ध्यान प्रायः पतली सुई पर नहीं होता। हम घंटे की और मिनट वाली सुई को देखकर समय जान लेते हैं कि इस समय इतना बजने वाला है। परन्तु जिस सुई को हमने नजर-अंदाज किया है वह भी बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। इस पर हम ध्यान दें। सेकेण्ड वाली सुई तीनों सुइयों में से सबसे तेज चलने वाली होती है। वह हमें यह संदेश देती है कि सिर्फ मैं ही इतनी तेजी से नहीं चल रही हूं बल्कि "समय" इतनी तेजी से चल रहा है। हम अपने समय का सदुपयोग करें। अभी भी सुनहरा मौका कल्याण साधना के लिए बाकी है। अतः अभी भी सावधान हो जायें "जब जागे तभी सबेरा"।

15. गंदगी जहां भी सड़ती है, आसपास के वातावरण में दुर्गंधी फैल जाती है, रेंगने वाले कीड़े जहां-तहां घुमना शुरू कर देते हैं। मक्खी-मच्छर पैदा हो जाते हैं। इनमें से प्रत्येक विकृति को हम दूर करना चाहें तो कठिन है लेकिन यदि उस गंदगी को साफ कर दिया जाये तो वह सब विकृतियां दूर हो जायेंगी जिनसे हम परेशान थे। यही बात हमारे जीवन में भी लागू होती है। हंसता-हंसाता, खिलता-खिलखिलाता हुआ जीवन हमारा होना चाहिए था, सब समय प्रसन्न और प्रफुल्लित रहना चाहिए था लेकिन ऐसा बन नहीं पाया। इसका कारण यह है कि हमारे जीवन में जो अशुद्धियां छाई हुई हैं उनसे हमारी मानसिकता दूषित हो गयी है। इन विकारों को साफ कर लें जीवन अभी भी खुशियों से भर जायेगा।

16. अन्य जीवधारियों को हम देखते हैं तो सृष्टि का कोई भी प्राणी बीमार मालूम नहीं पड़ता। बुढ़ापा तो सबको आता है, मरना भी सबको है; पर बीमारी किसी भी योनि में दिखाई नहीं पड़ती। बीमारी के कारण किसी को रोता-कराहता नहीं देखा जाता। हां, मनुष्यों से सटे हुए प्राणियों में जैसे कुत्ता, गाय, बैल, घोड़ा आदि में कभी हो सकती है यह भी अत्यंत कम। केवल एक मनुष्य ही ऐसा अभागा प्राणी है जो बार-बार बीमार पड़ता रहता है। इसका एक ही कारण है आहार-विहार का असंयम। हमारी जीभ काबू में नहीं है। हम इन्द्रियों को संयमित करके और उचित श्रम करके सुंदर स्वास्थ्य पा सकते हैं। स्वस्थ तन में ही स्वस्थ मन का निवास होता है। अतः शरीर को स्वस्थ रखना भी एक साधना है। साधन के ठीक रहने पर ही साध्य तक पहुंचा जा सकता है।

17. पीलिया के मरीज को हर चीज पीली दिखाई पड़ती है। ठीक इसी तरीके से विकृत दृष्टिकोण होने पर हमें हर जगह नरक, द्वेष, दुश्मन दिखाई पड़ते हैं, आशंकाएं और भय दिखाई पड़ते हैं। झाड़ी में भूत और रस्सी में सांप निकलने वाली बात याद ही होगी। ये आशंकाएं केवल हमारे विकृत मस्तिष्क के लक्षण हैं। हमारा चिंतन का तरीका अगर सुधर जाये तो पूरा जीवन सुधर जायेगा और निर्भयता आने पर सारी आशंकाएं समाप्त हो जाती हैं।

18. आलस्य और प्रमाद जिन लोगों पर छाया रहता है दरिद्रता स्थायी रूप से उनके पास बनी रहती है। शारीरिक दरिद्रता आलस्य के रूप में और मानसिक दरिद्रता प्रमाद के रूप में जिन लोगों के पास है वे कितना ही धन होने पर भी गरीबों जैसा ही जीवन जीयेंगे। अतः आलस्य और प्रमाद छोड़कर उदार और हंसमुख होकर जीवन जीयें। चेहरे की मुस्कुराहट शरीर और मन दोनों को सुन्दर बनाती है। फोटो खिंचवाते समय फोटोग्राफर कहता है Please smile। हमारा 2 सेकेण्ड का मुस्कुराना चेहरे को सुन्दर बना देता है ऐसे ही हमेशा मुस्कुराने की आदत हमारे पूरे जीवन को सुन्दर बनाती है।

19. किसी दिन एक टाइम भोजन नहीं किया तो पूरा दिन याद रहता है कि आज हमने भोजन नहीं किया है, खूब भूख लगी है। इसके बदले में दूसरे समय खूब भोजन करते हैं। क्या ऐसे ही जिस दिन संध्योपासना, ध्यान, चिंतन, पाठ, मनन, स्वाध्याय आदि नहीं किये तो याद रहता है? क्या टीस होती है, मन में खटक पैदा होती है कि आज हम जीवन का महत्त्वपूर्ण काम नहीं कर पाये? महीनों बीत जाते हैं फिर भी अहसास नहीं होता कि हम अपने समय को व्यर्थ में गवां रहे हैं। होना यह चाहिए कि आज हम एक टाइम पूजा, पाठ, स्वाध्याय, ध्यान, चिंतन-मनन आदि का काम नहीं कर पाये हैं तो उसके दंडस्वरूप हम एक टाइम भोजन छोड़ दें क्योंकि साधक के लिए शरीर की खुराक से ज्यादा☞

हम ईश्वर के अधीन हैं या ईश्वर हमारे

लेखक—विमलनाभ श्रीवास्तव

यदि सर्व साधारण से यह प्रश्न पूछा जाये कि हम ईश्वर के अधीन हैं या ईश्वर हमारे अधीन है तो सर्वाधिक लोगों का यही उत्तर होगा कि हम ईश्वर के अधीन हैं न कि ईश्वर हमारे। वह ईश्वर जो कहीं बाहर है, सर्वशक्तिमान है। परन्तु वास्तविकता इससे परे है। यदि गहराई से चिन्तन कर के देखें तो सच्चाई सामने आ जायेगी कि हम ईश्वर के अधीन नहीं हैं अपितु ईश्वर हमारे अधीन है। इसमें दो राय नहीं कि ईश्वर के पास सर्वोच्च अधिकार है, वह निर्णायक है, निर्णय कर्ता के सर्वोच्च आसन पर बैठा है, किसी के साथ पक्षपात नहीं करता। क्योंकि उसका न कोई अपना है और न कोई पराया। वह सब को उसके कर्मों के अनुसार निर्णय (कर्मफल) देता है। इसको विधाता के नाम से सम्बोधित करते हैं। अर्थात वह विधि (कानून या नियम) का ज्ञाता है। उसका निर्णय सब को मान्य है। जिस प्रकार सर्वोच न्यायालय के न्यायाधीश द्वारा दिया गया निर्णय सबको मान्य होता है क्योंकि उसका निर्णय अन्तिम होता है। हम यही कहते हैं कि विधाता जो भी करता है ठीक ही करता है। हमें सुख-दुःख विधि के विधान (नियम) के अनुसार प्राप्त होता है। ईश्वर (विधाता) का प्रत्येक निर्णय निर्धारित नियम के अनुसार होता है। अर्थात वह (ईश्वर) नियम के अधीन है। नियम के विपरीत अपने इच्छानुसार वह कोई निर्णय नहीं दे सकता। शुभ-अशुभ फल कर्म पर आधारित है। इसका अर्थ यह है कि ईश्वर हमारे कर्म के अधीन है और कर्म हमारे अधीन है। इस प्रकार ईश्वर हमारे अधीन है। हम अपना कर्म करने में स्वतंत्र हैं, उसके फल पाने में स्वतंत्र नहीं हैं। ऐसा नहीं हो सकता कि हम गलत कर्म करें और अपनी इच्छा के अनुसार अच्छे फल प्राप्त कर लें। गीता में श्रीकृष्ण का यही कहना है कि जीव (हम) कर्म करे फल की इच्छा न करे। कर्म करने पर फल तो प्राप्त होगा ही। अभिप्राय यह है कि हम कर्म करने के लिए स्वतंत्र हैं, उसके परिणाम के सम्बन्ध में स्वतंत्र नहीं हैं। हम अपने कर्म से बंधे हुए हैं। उसी के अनुसार हम सुख-दुःख भोगते हैं। हमारे कर्म हमारी इच्छाओं की प्रबलता पर निर्भर है। यदि हम अपनी इच्छाओं को अपने विवेक के नियंत्रण में रखें तो अशुभ कर्म करने से बच सकते हैं। संत तुलसी दास जी ने कहा है—"कर्म प्रधान विश्व करि राखा । जो जस किन्ह सो तस फल चाखा॥" संत शिरोमणि कबीर साहेब ने कहा है—

(1) कबीर कमाई आपनी, कबहू न निष्फल जाय।
बोया पेड़ बबूल का, आम कहां से खाय॥

(2) जस करनी तस भोग हूं दाता।
नरक जात फिर क्यों पछताता॥

(3) कर्म गति टारे नाहि टरी।

ईश्वर एक विश्वव्यापी नियम है। यदि विचार करके देखें तो पता चलता है कि कर्म हमको करने के लिए बाध्य नहीं करता। अपितु हमारे अनुसार ही कर्म होने के लिए बाध्य हो जाते हैं। यदि हमारे कर्म ठीक हैं तो कोई भी ईश्वर हमको दुख नहीं दे सकता। कर्म चाहे

☞महत्त्वपूर्ण है मन और आत्मा की खुराक। ताकि दूसरे दिन जीवन के महत्त्वपूर्ण काम से दूर न हों। नित्य का साधना-अभ्यास साधना रूपी भवन को मजबूत बनाता है। अतः अपने समय को हम हर क्षण कल्याण के काम में लगायें।

20. हास्पीटल में सब-कुछ हो सिर्फ डॉक्टर न हों तो हास्पीटल बेकार है। भोजन में सब-कुछ हो सिर्फ नमक न हो तो भोजन रुचिकर नहीं होता। गाड़ी में सब कुछ हो सिर्फ ब्रेक न हो तो गाड़ी बेकार हो जाती है। मंदिर में सब-कुछ हो सिर्फ मूर्ति न हो तो मंदिर का महत्त्व कुछ नहीं होता है। ठीक इसी प्रकार हमारे जीवन में सब-कुछ प्राप्त हो सिर्फ शांति न हो तो जीवन बेकार है। जैसे बाग की खूबसूरती फूलों से होती है ऐसे ही हमारे जीवन की खूबसूरती शांति से है। अतः शांति प्राप्ति का काम हमको तत्परतापूर्वक करना चाहिए। ❑

जैसे भी किये गये हों—जाने या अनजाने में, उसका फल तो प्राप्त होगा ही। उदाहरण के लिए आग पर हमारे पैर जानकर पड़े या अनजाने में पड़े दोनों ही दशाओं में पैर जलेगा ही। ऐसा नहीं हो सकता कि हम कहें कि हमने तो जान-बूझ कर आग पर पैर नहीं रखा है तो इसे नहीं जलना चाहिए। यहां भावना नहीं कर्म प्रधान है। और यही विश्वव्यापी नियम है जिसके अन्तर्गत ईश्वर अपना निर्णय देता है। विश्व में केवल दो शक्तियां हैं जिन्हें क्रमशः जड़-चेतन या प्रकृति-पुरुष के नाम से जाना जाता है। इन दोनों के अपने अलग-अलग विश्वव्यापी नियम हैं जिनके अनुसार कोई घटना घटित होती है। तथा कर्म फल प्राप्त होते हैं। कुछ कर्म ऐसे होते है जिनका फल शीघ्र प्राप्त होता है और कुछ के देर में प्राप्त होते हैं। कुछ प्रारब्ध कर्म होते हैं जो पिछले जन्म के होते हैं जिनका फल पिछले जन्म में नहीं प्राप्त हो सका। अतः उनका फल वर्तमान जन्म में उचित समय आने पर प्राप्त होते हैं। ये प्रारब्ध कर्म अच्छे या खराब दोनों प्रकार के हो सकते हैं। यदि हम अपने प्रारब्ध कर्मों की चिन्ता न करते हुए वर्तमान जीवन में अपने कर्म ठीक कर लें तो कोई ईश्वर हमको दुख नहीं दे सकता।

हम कर्म करने के कारण ही ईश्वर (नियम) के न्यायालय में पहुंचते हैं और उसके निर्णय का अच्छा-बुरा परिणाम भोगते हैं। यदि हम कोई ऐसा कार्य ही न करें जिसके कारण न्यायालय में जाना पड़े तो कोई न्यायाधीश (ईश्वर) क्या कुछ कर सकता है? उत्तर होगा नहीं। अर्थात ईश्वर के निर्णय से वंचित रहने के लिए हम कर्म करने से वंचित रहें। परन्तु ऐसा हो नहीं सकता। जीवन मिला है तो कर्म करना ही पड़ेगा। कर्म के शुभ-अशुभ फल कर्म के प्रकार पर निर्भर करता है। कर्म या तो सुकर्म हो सकते हैं या कुकर्म। इसके अतिरिक्त इन दोनों कर्मों से ऊपर अकर्म होता है। जिसको निष्काम कर्म कहते हैं। यह कर्म की एक ऐसी अवस्था है जिसमें जीव कर्म करते हुए भी कर्म से निर्लिप्त (अकर्मी) रहता है। उसको कर्म का फल नहीं भोगना पड़ता। इसको ही कहा गया है "कर्म करे और रहे अकर्मी।" यह दशा आप्त काम, निर्बन्ध संत सद्गुरु की होती है। इनको अपने कर्म का फल नहीं भोगना पड़ता है। क्योंकि इनको कर्म के फल में कोई आसक्ति नहीं होती है। ऐसे पुरुष सदा समभाव में रहते हैं। हर्ष-विषाद से परे उनकी रहनी होती है। वे संसार से विरक्त महानतम पुरुष हैं जिनको किसी प्रकार की चिन्ता नहीं होती है। ऐसे महापुरुषों के लिए ही कहा गया है—"चाह गई चिन्ता मिटी मनुवा बेपरवाह। जाको कछू न चाहिए सोई शाहनपती शाह।" इनकी रहनी इस प्रकार की हो जाती है कि ईश्वर स्वतः उनकी इच्छा के बारे में पूछता है। कहा गया है "खुदी को कर बुलन्द इतना कि हर तकदीर से पहले, खुदा बन्दे से खुद पूछे बता तेरी रज़ा क्या है।" कबीर साहेब कहते हैं—"कबीर जब हम पैदा हुए, जग हंसा हम रोये। ऐसी करनी कर चलो हम हंसे जग रोय।" जीवन की सफलता इसी में है कि हम अपनी करनी एवं रहनी को सुधार लें। अर्थात नेक कर्म करें जिससे दुःख न भोगना पड़े।

संसार में जीव के पदार्पण के बाद जैसे ही वह होश सम्हालता है अर्थात कुछ समझने के योग्य होता है, उसको सांसारिक परम्परा के अनुसार विरासत में सबसे पहले यह धारणा दे दी जाती है कि कोई सर्वशक्तिमान ईश्वर बाहर अदृश्य रूप में है जिसके द्वारा ही संसार में सब कुछ हो रहा है या सब कुछ घटित होना सम्भव है। हम सब उसके अधीन (नियंत्रण में) हैं। उसकी इच्छा के अनुसार ही हम सुख-दुःख भोगते हैं। जीव के मन में ईश्वर का भय पैदा कर दिया जाता है कि यदि हम इनकी पूजा-अर्चना नहीं करें तो ये हमसे नाराज हो जायेंगे और हमको दुख देंगे। ईश्वर को भगवान (परमात्मा), अल्लाह, रब तथा गॉड के नाम से भी जानते हैं। हिन्दू परम्परा में परमात्मा के अतिरिक्त बहुत सारे देवी-देवता हैं जो हमको सुख-दुःख देने में समर्थ हैं। धर्मग्रन्थों (पुराणों) के अनुसार तैंतीस करोड़ देवी-देवता हैं। वर्तमान समय में तो हर दिन कोई न

कोई नये देवता पैदा हो रहे हैं। सच्चाई तो यह कि मन्दिर-मस्जिद, गुरुद्वारा तथा गिरजाघर में बैठे ये ईश्वर हमारे अपने विश्वास एवं कर्म के अनुसार ही अच्छे-बुरे फल देते हैं।

ईश्वर का प्रारूप हम अपनी कल्पना के अनुसार जैसा चाहते हैं बनाते हैं। इन देवी-देवताओं में ऐसा सामर्थ्य नहीं है कि अपनी इच्छा के अनुसार अपना स्वरूप निर्धारण करा सकें। हम जहां चाहें जैसा चाहें खुले आकाश में, सड़क के किनारे, भव्य मन्दिर में स्वर्णछत्र के नीचे खड़े, बैठे अथवा लेटे किसी भी अवस्था में स्थापित करें यह सब हमारे ऊपर है न कि इन देवी-देवताओं की इच्छा पर। इनका सब कुछ हमारे ऊपर निर्भर है कि किसी को क्या भोग, प्रसाद अर्पित किया जाये न कि जैसा देवी-देवता चाहें। भोग-प्रसाद के सम्बन्ध में किसी द्वारा कथित एक कथन याद आ रहा है। एक मन्दिर के पुजारी ने ठाकुर जी को भोग लगाने के लिए जौ की रोटी तथा करेला की सब्जी बनाई थी क्योंकि पुजारी जी को मधुमेह (सुगर) की बीमारी थी। पुजारी जी को वही खाना है जो ठाकुर जी को भोग लगेगा। अब ठाकुर जी को तो कोई बीमारी नहीं है फिर भी वह मजबूर हैं उन्हें वही खाना है जो पुजारी जी खायेंगे। कोई भी देवी-देवता अर्थात किसी भी सम्प्रदाय के ईश्वर अपनी इच्छा के अनुसार भोजन-वस्त्र तथा आवास नहीं प्राप्त कर सकते।

इस प्रकार हम देखते हैं कि देवता अथवा अलग-अलग सम्प्रदायों के ईश्वर हमारे अधीन हैं न कि हम ईश्वर के। वास्तव में सब कुछ कर्म के अनुसार होता है। कर्म हमारे द्वारा किया जाता है। बाहर कोई ईश्वर नहीं बैठा है जो हमको दुख-सुख देता है। ईश्वर हमारे अन्दर चेतन ज्ञान स्वरूप है जिसमें विचार, विवेक एवं परख की शक्ति है। जिसको आत्मा-परमात्मा, अल्लाह, रब, गॉड जो भी नाम दे दें। यदि हम अपनी आत्मा की आवाज सुनें और मन तथा इच्छाओं के द्वारा प्रभावित न होकर सही निर्णय ले कर कर्म करें तो वह सदा सुखदायक होगा। अतः शुभ कर्मफल की प्राप्ति हेतु हमें अपनी भावनाओं, विचारों, इच्छाओं को नियंत्रित एवं परिशुद्ध करने की आवश्यकता है। इसके लिए हमें रहनी सम्पन्न संत-सद्गुरु, महात्माओं के सान्निध्य में रहकर उनके निर्णय वचन से ज्ञान प्राप्त कर उसको अपने जीवन में धारण करना होगा।

दुःखपूर्ण प्रारब्ध कर्मभोग वर्तमान समय में सतकर्म करने से क्षीण हो जाते हैं। उदाहरण के लिए यदि किसी को किसी अपराध कर्म के कारण आजीवन या लम्बे समय के लिए कारावास का दण्ड मिला हो तो कारागार में रहकर दण्ड भोगते समय यदि उसका आचरण, व्यवहार एवं कर्म ठीक रहता है तो सरकार द्वारा दण्ड की अवधि कम कर दी जाती है, उसे समय से पहले दण्ड से मुक्त कर दिया जाता है।

इसी प्रकार यदि वर्तमान जीवन में अपने कर्मों को सुधार कर सुकर्म तथा अकर्म के रूप में रखें तो हमारे अशुभ प्रारब्ध कर्म कम अवधि में ही समाप्त हो जाते हैं। हमारे दुर्दिन अपने कर्मों के सुधार से दूर होंगे न कि बाहरी ईश्वर (देवी-देवताओं) को प्रसन्न करने हेतु पूजा-अनुष्ठान, हवन-तर्पण करने से।

अच्छा तो यह है कि हम सबके प्रति शुभ भावना रखें। यथायोग्य सहायता करें। यदि सहायता नहीं कर सकते तो किसी के प्रति अशुभ विचार न रखें। किसी की प्रगति में न तो किसी प्रकार का व्यवधान डालें न ही ईर्ष्या करें। ऐसी रहनी बनाने के लिए यह आवश्यक है कि हम संतों का सत्संग करें, सद्ग्रन्थों का अध्ययन करें, चिन्तन-मनन करें, आत्मनिरीक्षण करें। बाहर ईश्वर को खोजने, पूजने में व्यर्थ समय न गंवायें। अपने मन-इन्द्रियों को नियंत्रित करके अपने निजस्वरूप में स्थिर होने का प्रयास करें। नित्य के अभ्यास, चिन्तन-मनन से चित्त एकाग्र होकर अपने निज स्वरूप में स्थित हो जायेगा। कहा गया है "नित खरसान लोह जंग छूटे।" रोज-रोज लोहे को मांजते रहने से उसका जंग छूट जाता है। वैसे ही नित के अभ्यास से दुर्गुण दूर हो जाते हैं और सद्गुण प्राप्त होने लगते हैं।

❑

परमार्थ पथ

सद्गुरु ज्ञान ठिकाना है

तुम परिवार, समाज, पार्टी, संस्थान, कंपनी में हो या किसी भी जनसमूह में हो, अपने को अकिंचन मानो और यह समझो कि तुम किसी भीड़ में हो, और उसमें तुम्हारा कोई नहीं है। तुम अधिकार की भावना से रहित होकर सबके साथ अपना समता और शक्ति पूर्वक यथाशक्ति सुंदर व्यवहार करो। किसी पर अपना अधिकार मानने की भूल न करो। अगर तुम शांति चाहते हो तो सबसे निष्काम रहने में लाभ समझो। मन के हर्ष और अमर्ष अपने अहंकार के परिणाम हैं। हमें अपने अहंकार को नष्ट करने का प्रयास करना चाहिए। अपना अहंकार मिट गया, बेड़ा पार हो गया।

* * *

याद रखो, तुम जिस बात को लेकर मन पीड़ित तथा उद्वेलित करते हो, वह क्षणिक है, रह नहीं जायेगी, और यह समझो कि वह है ही नहीं। तुम्हारे जीवन-काल में भी वह ऐसी भूल जायेगी कि मानो हुई ही नहीं है; और आज-कल में शरीर छूट जाने पर उसका तुम्हारे लिए अस्तित्व ही नहीं रह जायेगा। तुम किस बात को लेकर आंदोलित होते हो? सब समय सब कुछ का अंत देखो। दुनिया की अनुकूल वस्तुओं में बड़े चुपके से राग होने लगता है, यही फांसी है। सब कुछ का सब समय अंत देखो। अखंड वैराग्य से ही परम शांति मिलेगी।

* * *

सारा दृश्य स्वप्न की वस्तु है। जग जाने पर जैसे स्वप्न की वस्तुओं का महत्त्व नहीं रह जाता, वैसे स्वरूपज्ञान में जग जाने पर संसार की वस्तुओं का महत्त्व नहीं रह जाता। फिर तो निराश वर्तमान में बरतते हुए और शरीर निर्वाह लेते हुए कालक्षेत्र करना रहता है। सब तरफ से निष्काम साधक सदैव आनंदकंद है। हे मन! तू अनादिकाल से जगत-प्रपंच में ही रमता रहा, अब उससे पूर्णतया हटकर आत्माराम में रमना है।

* * *

सब हानि, घाटा और अपमान सहकर भी मन की शांति की हानि न करो। याद रखो, मन की अचल शांति के समान संसार की कोई उपलब्धि नहीं है। अविद्वान से विद्वान, दरिद्र से धनवान, सामान्य से सम्मानित और पूज्य लोगों की एक ही शिकायत है कि मन स्थिर नहीं होता। अतः जिसने अपने मन को स्थिर कर लिया, वह सर्वोच्च हो गया। क्योंकि संसार की सारी उपलब्धियां शांति नहीं दे सकतीं, मन की स्थिरता शांति देती है। सांसारिक इच्छाओं को छोड़े बिना मन स्थिर नहीं हो सकता। जो व्यक्ति अन्य कुछ भी चाहेगा। वह अपने आत्मा में स्थिर नहीं हो पायेगा। परम शांति पूर्ण निष्काम होने पर होती है।

* * *

सारा संबंध शून्य हो जाता है, सारी वार्ताएं शून्य हो जाती हैं और शरीर छूटते ही जीव के लिए सारा संसार शून्य हो जाता है। इस तथ्य को सदैव अपने सामने रखकर सब कुछ से पूर्ण अनासक्त हो जाना चाहिए। जो हमारे साथ नहीं रहने वाला है उससे मोह कैसा! सब अनुराग, सब मोह, सब आसक्ति अपने आत्मदेव में करना है। अपना अस्तित्व अपने से अलग कभी नहीं होता, अतएव निरंतर स्वस्वरूप चेतन ही में रमना चाहिए। इसी में मन मक्खन बना रहेगा। जीवन ऐसा जीयो कि उसमें कहीं मानसिक क्लेश न हो। यही तुम्हारी साधना है, यही सावधानी है।

* * *

जैसे कोई पोला बांस में हवा जाने से वह पों-पों आवाज करे, वैसे जीव इस चाम के थैले नरक कुंड में बैठा अहंकारजनित अनेक आवाज तथा बातें करता रहता है और नाना प्राणी-पदार्थों में अपना तादात्म्य करता रहता है। किंतु आज-कल में शरीर छूटते ही उसका सब तमाशा समाप्त हो जाता है। ऐसे मिथ्या देहोपाधि में पड़कर अहंकार करना और अपने को

जड़-दृश्य में जोड़ना घोर अविवेक है। अतएव निरंतर देहभाव छोड़ो, अपनी असंगता और देहातीत दशा को देखो। मौन होकर जीयो। असली मौन है मन का शांत रहना। मन की शांति परम उपलब्धि है।

* * *

देह अनात्म है, मिट्टी का पिंड है और अंततः भ्रांति मात्र है। मैं निरवयव, निर्विकार शुद्ध चेतन हूं। मेरे में कोई विकार और संबंध संभव ही नहीं है। जितना संबंध दिखता है वह देह के कारण है और देह अंततः मिथ्या है। देह के मिथ्यात्व को निरंतर देखने वाला देहाध्यास से मुक्त हो जाता है। देहाध्यास से मुक्त जीव ही स्वरूपस्थिति में ठहरता है। इस मिथ्या संबंध को कांटे के समान समझो। इसमें कहीं भी मोह न करो। कहीं किसी का कुछ नहीं है। अतएव प्रपंच शून्य असंग आत्मस्थिति को निरंतर देखो और उसी में हर क्षण विद्यमान रहो। इस कूड़े कचड़े संसार में पुनः आने की संभावना न रह जाये, ऐसी रहनी में रहो।

* * *

शरीर को जैसा वह है वैसा देखने से उसका मोह मिट जाता है। भीतर हड्डियों का जोड़ कंकाल है। मांस छाया है। मोटी और महीन नसें शरीर भर में व्याप्त हैं और उनमें रक्त प्रवाहित रहता है। टट्टी-पेशाब की थैलियां अंदर में लटकी हैं। शरीर रोगों का घर है। इसमें उद्वेगों का ज्वार है। यह सदैव जीव के लिए संताप देने वाला है। इस शरीर की सत्यता को निरंतर देखे और इससे पूर्ण अनासक्त होकर केवल भाव में विद्यमान रहे। इस शरीर और संसार में कुछ अपना मानना अविद्या है। निरंतर विवेक के मार्जन से अविद्या मिट जाती है और फिर सदैव दिव्य दृष्टि बनी रहती है, वह है अपनी असंगता। संग भ्रम है। असंग तथ्य है।

* * *

देखे, सुने और भोगे हुए का मन में स्मरण आना प्रपंच है और घटित घटनाओं का मन में अनुकूल-प्रतिकूल द्वंद्व उठना प्रपंच है। इस प्रपंच से मुक्त रहना जीवन्मुक्ति है। भविष्य में सुख और सम्मान लाभ की कल्पना उठना प्रपंच है। व्यवहार के राग-द्वेष में उलझना, विवाद करना, झगड़ा करना प्रपंच है। मार-पीट, मुकदमेबाजी, दलबंदी, जेल-फांसी भयंकर प्रपंच है। सारे प्रपंच का आधार है मन का अहंकार। जो अपने अहंकार को मारता है वह प्रपंच से मुक्त रहता है। तुम्हारे आत्म-अस्तित्व में अहंकार की कोई गुंजाइश नहीं है। सारा अहंकार इस मुरदा शरीर के नाम-रूप को लेकर होता है, जो मन का पूर्ण धोखा है। अहंकार का अर्थ भयंकर मूर्खता है।

* * *

देह से अपने आत्म-अस्तित्व की सर्वथा भिन्नता का निरंतर बोध रहना साधना का परम फल है। किसी की साहिबी सदा नहीं रहती। सदा क्या अत्यंत अल्पकाल रहती है। भारत जबसे स्वतंत्र हुआ, कितने मंत्री हुए, मुख्यमंत्री हुए, प्रधानमंत्री हुए, सब लुप्त हो गये। बड़े-बड़े प्रसिद्ध लोग लुप्त हो गये। तुम्हारी फुलझड़ी भी लुप्त हो जायगी। सारा अहंकार छोड़कर शांत हो जाओ।

जीवन में एक ही काम मुख्य है—मन को पूर्ण पवित्र, संयत और समाधिस्थ कर लेना। जिसने अपने मन को वश में किया वह धन्य हो गया। उसके जीवन से दुख बिदा हो गया।

* * *

सत्संग का फल है मन का निष्काम हो जाना। तुम दुखी कब होते हो, जब कोई कामना करते हो। वह कामना अंत में खोखली सिद्ध होती है। तुम्हारी सफलता है हर समय निष्काम बने रहना। आज-कल में शरीर लुप्त हो जायेगा। तुम सबसे निष्काम रहकर परमानंद का अनुभव करो। परमशांति ही परमानंद है।

क्या रखा है जड़-दृश्य में। यह तो सब देखते-देखते भागा जा रहा है। द्रष्टा सदैव स्थिर है जो मैं हूं। मैं अपने शांति-काम में सब समय स्थिर रहूं, यही सच्ची सफलता है। शांति ही जीवन का सच्चा सुख है, शेष धोखा है, आज है, कल नहीं है।

❑

मोर बहुरिया को धनिया नाऊ

(गतांक से आगे)

डॉक्टर उपाधिधारी विद्वान कहे जाने वाले जब भटकते हैं और पहले से ही मन में एक नक्शा बनाकर किसी पद-श्लोक-साखी का अर्थ करने बैठते हैं तब कैसा अनर्थ करते हैं, इसका एक नमूना और देखें—

कबीर साहेब की एक साखी है—

मन फाटे बाइक बुरै, मिटी सगाई साक।
जैसे दूध तिवास का, उलटि हुआ सो आक॥

इस साखी का सीधा-सरल अर्थ है—जब मन फट जाता है तब अच्छी सीख देने वाला उपदेशक भी बुरा लगने लगता है और उससे मित्रता उसी प्रकार टूट जाती है जिस प्रकार तीन दिन का बासी दूध फटकर मदार के दूध के समान विषैला हो जाता है।

इस साखी में आये बाइक का अर्थ है वाचक, दूत, जिसका लक्षणा अर्थ है उपदेशक, अच्छी सीख-राय देने वाला। बृहत हिन्दी कोश में बाइक-बायक का अर्थ वाचक, दूत दिया गया है।

इस साखी का अर्थ करते हुए डॉ. जयदेव सिंह डॉ. वासुदेव सिंह लिखते हैं—

"व्याख्या—(1) इस साखी में 'बाइक' शब्द सबसे टेढ़ा है। यदि 'बाइक' बारिक एक बार के अर्थ में लिया जाये, तो साखी का भाव इस प्रकार होगा—

जैसे तीन दिन का बासी दूध फटकर मदार के दूध की तरह विषैला हो जाता है, वैसे ही मेरा मन एक बार ही एकदम संसार से बुरी तरह फट गया और उसके प्रति अनुराग और विश्वास जाता रहा।"[1]

बाइक शब्द को टेढ़ा मानते हुए भी डॉ. जयदेव सिंह डॉ. वासुदेव सिंह ने साखी का जो अर्थ ऊपर दिया है, उत्तम है। इससे किसी को आपत्ति नहीं होगी। परंतु इस अर्थ से उनको संतोष नहीं हुआ इसलिए उन्होंने मनगढ़न्त-मनमानी अर्थ कर अनर्थ का काम किया। देखिये उनकी दूसरी व्याख्या—

(2) यदि 'बाइक' वाक्य का तद्भव (वर्ण-विपर्यय) माना जाय तो अर्थ इस प्रकार होगा—

कहा जाता है कि कबीर के दो विवाह हुए थे। उनकी पहली पत्नी कुरूपा और मूर्खा थी। वह कबीर की भक्ति-भावना का सदैव विरोध करती रहती थी (दे. संत कबीर, पद संख्या-6) उसी पत्नी की ओर संकेत करते हुए कबीर कहते हैं कि जैसे तीन दिन का बासी दूध फटकर मदार के दूध की तरह विषैला हो जाता है, वैसे ही पत्नी के कटु वाक्य से मेरा मन संसार से विरक्त हो गया और उसके प्रति अनुराग और विश्वास जाता रहा।"

साफ देखा जा सकता है कि विद्वान नामधारी लोग जब बहकते हैं तब कहां से कहां चले जाते हैं। चलो, मान लिया जाये कि बाइक वाक्य का तद्भव है तो इसमें पहली पत्नी कहां से आ गयी। पहली पत्नी के कटु वाक्य से मेरा मन संसार से विरक्त हो गया—यह अर्थ करना दूर की कौड़ी लाना है। और जब पत्नी के कटु वाक्य से कबीर का मन संसार से विरक्त हो गया और उसके प्रति अनुराग और विश्वास जाता रहा तब कबीर दूसरी शादी क्यों कर रहे हैं। क्या जिसका मन संसार से विरक्त हो जाता है, और जिसके मन में संसार के प्रति अनुराग एवं विश्वास नहीं रह जाता वह फिर विवाह-शादी के चक्कर में पड़ता है? डॉ. जयदेव सिंह डॉ. वासुदेव सिंह विरक्त होने का अर्थ क्या समझते हैं? वस्तुतः उन्हें भी डॉ. रामकुमार वर्मा का समर्थन करते हुए कबीर की दो पत्नियां सिद्ध करना था और यह दूर की कौड़ी लाये बिना सिद्ध हो नहीं सकता था।

जो पद रूपक में कहे गये हैं उनका लक्षणा अर्थ न कर अपितु अभिधा अर्थ करके और जो पद-साखी जन सामान्य की मनोदशा के वर्णन में हैं उन्हें जबर्दस्ती घसीटकर एवं मनमाना अर्थ करके जो विद्वान कबीर की दो पत्नियां सिद्ध करने पर तुले हुए हैं वे कबीर की निम्न साखियों पर ध्यान क्यों नहीं देते जिनमें कबीर स्वयं को मायामुक्त-विरक्त बता रहे हैं—

---

1. कबीर वाङ्मय, खंड 3, विर्कताई को अंग, साखी 2, पृ. 246।

माया जग सांपिनि भई, विष ले पैठि पताल।
सब जग फन्दे फंदिया, चले कबीरू काछ॥
(बीजक, साखी 142)

सात द्वीप नौ खण्ड में, सबसों फगुवा लीन्ह।
ठाढ़ी कहै कबीर सों, तुमने कछु न दीन्ह॥
(साखी ग्रंथ, माया को अंग)

कबीर माया पापिनी, फंद ले बैठी हाटि।
सब जग तो फन्दे परा, गया कबीरा काटि॥
कबीर माया मोहिनी, जैसी मीठी खांड़।
सतगुरु की कृपा भई, नहीं तौ करती भांड़॥
माया हमसौं यों कहै, तू मति दे रे पूठि।
और हमारे बसि पड़े, गया कबीरा रूठि॥
(कबीर वाङ्मय, खंड 3, माया को अंग)

उक्त साखियों का अर्थ क्रमशः इस प्रकार है—

संसार में माया सर्पिणी हो गयी है और विषय-वासना रूपी विष लेकर मनुष्य के अंतःकरण रूपी पाताल में पैठ (घुस) गयी है। संसार के सारे लोग तो इसके फंदे में फंस गये, किन्तु कबीर इसका त्यागकर इससे अलग हो गया।

माया कबीर के सामने खड़ी होकर कहती है—ऐ कबीर! सात द्वीप नौखण्ड अर्थात पूरे संसार में मैंने सब लोगों से विषय-भोग का फगुवा ले लिया है, परंतु तुमने मुझे कभी कुछ नहीं दिया, सदैव खाली हाथ लौटा दिया।

कबीर कहते हैं कि पाप में ले जाने वाली माया इस संसार रूपी बाजार में फंदा लिये बैठी है। संसार के सारे लोग उसी पाश में फंस गये। केवल कबीर (प्रभु शरण ले) इस फंदे को काटकर निकल गया। अर्थात उसके प्रलोभन से बच गया और परमार्थ को प्राप्त कर लिया।

कबीर कहते हैं कि माया में विचित्र आकर्षण शक्ति है, जिसके द्वारा जीव विषयों को मधुर समझकर उनकी ओर आकृष्ट हो जाता है। मैं भी उसके प्रलोभन में आ जाता। किन्तु सतगुरु की कृपा हो गई जिससे मैं बच गया, अन्यथा वह मेरा भी पूर्ण विनाश कर देती।

माया मुझसे कहती है कि तू मुझे पीठ मत दे अर्थात मेरी उपेक्षा मत कर। अन्य सभी लोग मेरे वश में हैं। किन्तु यह सुनकर भी कबीर उससे विमुख ही रहा। उसके चक्कर में नहीं आया।

कबीर आई मुझ हि पहि अनिक करे करि भेस।
हम राखे गुर आपने उनि कीनो आदेसु॥
कबीर माइआ चोरटी मुसि मुसि लावै हाटि।
एक कबीरा ना मुसै जिनि कीनी बारह बाट॥

अर्थ—कबीर कहता है (माया) अनेक वेश रख-रखकर मेरे समीप आई, किंतु जब गुरु ने मेरी रक्षा कर ली तो उसी (माया) ने मुझे प्रणाम किया।

कबीर कहता है, माया एक चोर की तरह है जो (लोगों को) चुरा-चुरा कर बाजार में बेचती है। एक कबीर ही को वह नहीं चुरा सकी जिसने उसे (माया को) बारह-बाट (नष्ट-भ्रष्ट) कर दिया।

यहां उपर्युक्त साखियों में कबीर ने जिस माया के बारे में कहा है वह माया दर्शन की माया नहीं है, किंतु व्यवहार की माया है। व्यवहार की माया है वे प्राणी और पदार्थ जो मन में मोह एवं आकर्षण उत्पन्न कर मनुष्य को सत्पथ-परमार्थ-साधना से विचलित-पतित कर दें। भौतिक धन-ऐश्वर्य, पद-प्रतिष्ठा तो माया हैं ही परमार्थ-साधक पुरुष के लिए स्त्री का मोह एवं परमार्थ-साधिका स्त्री के लिए पुरुष का मोह सबसे बड़ी माया है। व्यवहार की माया के रूप में कबीर धन-ऐश्वर्य और स्त्री का मोह दोनों को साथ-साथ लेते हैं और उनके लिए वे प्रायः कनक-कामिनी युग्म शब्दों का प्रयोग करते हैं। ऊपर उद्धृत सभी साखियों में कबीर एक स्वर से कह रहे हैं कि जिस माया (धन-स्त्री) के मोह में संसार के सारे लोग फंसे-डूबे हुए हैं और जिस (माया) ने संसार के सारे लोगों को भ्रमा-भटका-पतित कर दिया है उससे मैं पूर्णतः बच गया हूं। कबीर के पास लौकिक धन तो था ही नहीं, आजीवन वे विरक्त-अविवाहित रहे हैं तभी वे पूर्ण आत्मविश्वास के साथ अपनी बात कह सके थे और हिन्दुओं के त्रिदेव ब्रह्मा, विष्णु एवं महादेव को इसलिए मायाग्रस्त कहे थे कि उनके साथ क्रमशः ब्रह्मानी (सरस्वती), लक्ष्मी एवं पार्वती पत्नी के रूप में रहीं और तभी वे सुर, नर, मुनि को चुनौती देते हुए कह सके थे कि—

सो चादर सुर नर मुनि ओढ़ी ओढ़ के मैली कीनी चदरिया।
दास कबीर जतन से ओढ़ी ज्यों की त्यों धर दीनी चदरिया॥

इस ज्वलंत सत्य को नजरअंदाज कर यह कहना कि कबीर विवाहित थे और उनकी दो पत्नियां थीं विद्वानों का भटकाव और भयंकर भूल है तथा कबीर के साथ सरासर अन्याय करना है। ऊपर उद्धृत प्रारंभ की पांच साखियों में से अंतिम की तीन डॉ. जयदेव सिंह डॉ. वासुदेव सिंह द्वारा संपादित कबीर वाङ्मय, खण्ड 3 से उद्धृत की गयी हैं और उनका अर्थ भी उन्हीं का दिया हुआ है तथा नीचे की दोनों साखियां डॉ. रामकुमार वर्मा द्वारा संपादित 'संत कबीर' से उद्धृत की गयी हैं और उनका अर्थ भी डॉ. वर्मा का किया अर्थ ही दिया गया है। इतना ज्वलंत तथ्य स्पष्ट होते हुए भी उनसे आंखें मीचकर मनगढ़ंत कल्पना करना पाठकों को भ्रम में डालना नहीं तो और क्या है!

किसी भी महापुरुष के जीवन को, जिन्होंने अपनी आत्मकथा नहीं लिखी या जिनकी प्रामाणिक कोई जीवनी तत्कालीन संतों-भक्तों ने नहीं लिखी, समझने के लिए दो प्रमाण होते हैं एक अंतःसाक्ष्य और दूसरा बहिर्साक्ष्य। अंतःसाक्ष्य उनकी वाणी है और बहिर्साक्ष्य उनकी परंपरा। अंतःसाक्ष्य के रूप में उपलब्ध पूरे कबीर वाङ्मय का निष्पक्षतापूर्वक अध्ययन करने से यह स्पष्ट सिद्ध होता है कि कबीर आजीवन अविवाहित ही रहे हैं। उनकी न कोई पहली पत्नी थी और न दूसरी। रूपक में उन्होंने जिसे पहली-दूसरी कहा है वह माया और भक्ति या कुमति और सुमति है। उनका व्यक्तिकरण करना अर्थ का अनर्थ करना है और सत्य-तथ्य से भटककर दूसरों को भी भटकाना है। बहिर्साक्ष्य कबीरपंथ की परंपरा है। कबीरपंथ में गृहस्थ-विरक्त दोनों प्रकार की शाखाएं एवं गद्दियां हैं और दोनों के संत-महंत-भक्त कबीर को आजीवन अविवाहित-विरक्त ही मानते हैं और यही सत्य-तथ्य है। इसके विपरीत कथन भ्रममूलक एवं अज्ञानजन्य है।

डॉ. रामकुमार वर्मा कबीर की दो पत्नियां बताकर ही पाठकों के मन में भ्रम उत्पन्न नहीं करते अपितु उनके अनेक पुत्र-पुत्री बताकर तथा कबीर के जीवन को असफल बताकर भी अपने पाठकों के मन में भ्रम डालते हैं। जब कबीर आजीवन अविवाहित-विरक्त रहे हैं तब उनके पुत्र-पुत्री होने का प्रश्न ही कहां रह जाता है। कबीर साहेब के नाम से प्रचलित इस साखी से—''बूड़ा बंस कबीर का उपजा पूत कमाल। हरि का सुमिरन छांड़ि कर, घर ले आया माल॥'' लोगों के मन में ज्यादा भ्रम पैदा हो गया कि कबीर के कमाल नामक पुत्र थे जिसने उनके वंश को डूबा दिया, क्योंकि उसने हरि का सुमिरन-भजन करना छोड़कर घर में धन-संग्रह करना शुरू कर दिया। इस साखी को पढ़ने से लगता है कि कबीर के किसी शिष्य ने हरि का सुमिरन-भजन-साधना छोड़कर धन-संग्रह करना शुरू कर दिया हो और उसे देखकर किसी ने व्यंग्य में कहा हो कि कबीर जैसे निस्पृह संत का ऐसा कमाल का शिष्य हो गया, जो भजन-साधना की अपेक्षा धन-दौलत को ज्यादा महत्त्व दे रहा है। बाद में किसी ने इस पर एक साखी बना दी और वह सिक्खों के गुरुग्रंथ में संकलित हो जाने से विद्वानों को कबीर के परिवार गढ़ने-रचने में सरलता हो गयी।

डॉ. रामकुमार वर्मा अपने लिखे को शायद पलटकर पढ़ते नहीं थे, इसलिए कभी कुछ लिखते हैं और कभी कुछ। कैसे, इसे नीचे पढ़ें—

''ज्ञात होता है कि कबीर का एक पुत्र भी था जिसे इन संतों ने कबीर के निर्गुण ब्रह्म का उपासक न बनाकर सगुण ब्रह्म का आराधक बना दिया था।'' डॉ. वर्मा का यह वाक्य उनके 'कबीर एक अनुशीलन' के पृ.37 की टिप्पणी में पहली-दूसरी पंक्ति में है, इसके ठीक ऊपर की पंक्ति इस प्रकार है—''लड़के और लड़कियों के रूप में कबीर की अनेक सन्तानें थीं। इनकी संख्या ज्ञात नहीं है। केवल एक पुत्र का संकेत मिलता है।'' डॉ. वर्मा महोदय जब आप स्वयं लिख रहे हैं कि कबीर का एक पुत्र था और केवल एक पुत्र का संकेत मिलता है तब आप किस आधार पर लिखते हैं कि कबीर की अनेक सन्तानें थीं। क्या विद्वता का यही तकाजा है कि बिना प्रमाण के कुछ भी लिखता चला जाये।

डॉ. रामकुमार वर्मा तो कबीर की लड़के-लड़कियों के रूप में अनेक संतानें थीं, लिखते हुए भी अपने कथन की पुष्टि में कोई प्रमाण नहीं दे सके, आइये हम प्रमाण देते हैं कि उनके कितने लड़के थे और यह भी कि उनके पत्नी-बच्चे बड़े झगड़ालू थे, साथ-साथ बड़े स्वादी भी और वे कबीर का कहना

नहीं मानते थे। देखें कबीर साहेब अपने लड़कों की संख्या बताते हैं—

संतों घर में झगड़ा भारी।
राति दिवस मिलि उठि उठि लागें, पाँच ढोटा एक नारी।
न्यारो न्यारो भोजन चाहैं, पाँचों अधिक सवादी।
कोइ काहू का हटा न मानै, आपुहि आपु मुरादी॥
दुर्मति केर दोहागिन मेटे, ढोटहि चाप चपेरे।
कहहिं कबीर सोई जन मेरा, जो घर की रारि निबेरे॥

(बीजक, शब्द 3)

इस पद में कबीर अपने पांच लड़कों की बात कह रहे हैं और उन सबकी माता एक बता रहे हैं और यह भी कि उन पांचों की मां अर्थात अपनी पत्नी का नाम दुर्मति बता रहे हैं। यहां कबीर की पत्नी के रूप में डॉ. रामकुमार वर्मा या विद्वान द्वारा कथित न लोई है न धनिया-रमजनिया। दुर्मति मिलकर तो कबीर की तीन पत्नियां हो गयीं—लोई, धनिया (रमजनिया) और दुर्मति। परंतु विद्वानों ने दो में ही संतोष कर लिया है, जबकि कबीर अपनी छह पत्नियां बताते हैं। देखें बीजक का सातवां बसंत, जिसमें कबीर साहेब स्वयं कहते हैं—

घरहि में बाबुल बाढ़लि रारि, उठि उठि लागलि चपल नारि।
एक बड़ी जाके पाँच हाथ, पाँचों के पचीस साथ॥

इसमें कबीर की छह पत्नियां हैं। जिनमें एक बड़ी है और अन्य पांच उनकी सहयोगी और उन पांचों के पचीस पुत्र हैं। ऊपर के पद में जहां पांच पुत्र बताया गया है और इस पद में पचीस, उसमें न कमाल दिख रहा है और पुत्री कमाली दिख रही है।

जैसे ऊपर के पद में कहा गया है—

न्यारो न्यारो भोजन चाहैं, पांचों अधिक सवादी।
कोइ काहू का हटा न मानै, आपुहि आपु मुरादी॥

वैसे ही इस सातवें बसंत में कबीर कह रहे हैं—

अंतर मध्ये अन्त लेई, झकझोरि झोरा जीवहिं देई।
आपन आपन चाहैं भोग, कहु कुशल परि हैं योग।
विवेक विचार न करे कोय, सब खलक तमाशा देखें लोय।

इन पंक्तियों के आधार पर कबीर का जीवन-चरित्र इस प्रकार लिखा जा सकता है—कबीर के सभी लड़के-बच्चे बड़े स्वाद-लंपट थे। सब अलग-अलग भोजन चाहते थे। कोई किसी का कहना मानते नहीं थे, क्योंकि सबको अपना-अपना भोग प्रिय था। इसके लिए वे कबीर को रात-दिन झकझोरते रहते थे। इसलिए कबीर चिंतित रहते थे कि मेरी योग-साधना कुशलतापूर्वक कैसे निभेगी। कबीर कहते-समझाते थक गये, किन्तु कबीर के पत्नी-बच्चे उनकी बात नहीं माने। कबीर स्वयं कहते हैं—कहइत मोहि भयल युग चारी। समुझत नाहिं मोर सुत नारी।

पता नहीं, ये सारी बातें विद्वानों की पैनी दृष्टि से कैसे ओझल हो गयीं या उन्होंने कबीर की दो पत्नियां और एक बेटा-एक बेटी में संतोष कर कबीर के जीवन चरित्र को और अधिक बिगाड़ना न चाहा तो। यदि ऐसा है तो कबीर पर उनकी बड़ी कृपा हुई, जबकि कबीर ने उन्हें पूरा मसाला दे दिया है। यदि पूरी कबीर-वाणी की छानबीन करें तो कबीर के तीन या छह ही नहीं और अनेक पत्नियां तथा पुत्र-पुत्रियां मिल जायेंगी। यहां तक अपने एक पद में कबीर ने अपने माता-पिता, भाई-बन्धु, पुत्र-पुत्री, सास-ससुर सबका नाम बता दिया है। देखें निम्न पद—

हम सम कौन बड़ा परिवारी।
सत्य है पिता धर्म है भ्राता, लज्जा है महतारी।
शील बहन संतोष पुत्र है, क्षमा हमारी नारी॥
आशा सासु तृष्णा है सारी, लोभ मोह ससुरारी।
अहंकार है ससुर हमारे, सो सब में अधिकारी॥
ज्ञानी गुरु विवेकी चेला, सदा रहे ब्रह्मचारी।
काम क्रोध दोऊ चोर बसतु है, तिनका डर है भारी॥
मन दिवान सुरति है राजा, बुद्धि मंत्रि है भारी।
सत्य धर्म की बसै नगरिया, कहहिं कबीर पुकारी॥

कबीर का परिवार खोजना है तो ऐसे ही खोजना होगा और पाठकों को निराश नहीं होना पड़ेगा। कबीर-वाणी के परिप्रेक्ष्य में उन्हें कबीर का बहुत बड़ा और भरा-पूरा परिवार मिल जायेगा, परंतु डॉ. रामकुमार वर्मा और उनके जैसे अन्य विद्वानों को इस परिवार से संतोष नहीं होगा और वे स्वयं अपने लिए तथा दूसरों के लिए इस ढंग का परिवार चाहते भी नहीं हैं।

डॉ. रामकुमार वर्मा हिन्दी के लब्धप्रतिष्ठ विद्वान रहे हैं और उन्होंने देश-विदेश में हिन्दी की जो अपूर्व सेवा की है उसके लिए हिन्दी के पाठक और विद्यार्थी उनके

सदैव ऋणी रहेंगे, परंतु कबीर साहेब पर बहुत कुछ अच्छा लिखते हुए और कबीर को महान क्रांतिकारी विश्वकवि मानते हुए भी उन्होंने जिस प्रकार कबीर का चरित्र-हनन किया है, शायद ही किसी अन्य विद्वान ने किया हो। इस कथन का प्रमाण डॉ. वर्मा का निम्न निष्कर्ष है। कबीर ने अपने जिन पदों में सर्वसामान्य आम जनता की मनोदशा का वर्णन किया है और बताया है कि किस प्रकार लोग अपने जीवन को सांसारिक प्रपंचों में व्यतीत कर पश्चाताप करते हैं, उसको कबीर के जीवन में ही आरोपित कर कबीर की वृद्धावस्था का वर्णन करते हुए डॉ. रामकुमार वर्मा लिखते हैं—

"कबीर ने अपनी वृद्धावस्था का वर्णन विस्तार से किया है। एक पद में वे कहते हैं—

"मेरा यौवन व्यतीत हो गया, अब मैं बूढ़ा हो गया। अपने जीवन में मैंने कुछ भी भला नहीं किया। मैंने अपना यह अमूल्य जीवन कौड़ी के मोल फेंक दिया।" कबीर कहते हैं कि हे माधव! तू सर्वव्यापी है, तेरे समान कोई दयालु नहीं और मेरे समान कोई पापी नहीं।

जरा जीवन जोबनु गइआ किछु कीआ न नीका।
इहु जीअरा निरमोल को कउड़ी लमि मीका॥
कह कबीर मेरे माधवा तू सरब बिआपी।
तुम समसरि नाहीं दइआलु मोहि समसरि पापी॥

(संत कबीर, रागु बिलावलु 3)

एक दूसरे पद में वे कहते हैं—

मैंने बाल्यावस्था में बारह वर्ष व्यतीत किये और बीस वर्ष तक कोई साधना नहीं की, तीस वर्ष तक किसी देवता की पूजा नहीं की और फिर पछताते हुए वृद्धावस्था को प्राप्त हुआ। 'मेरा' 'मेरा' कहते ही सारा जन्म बीता। मेरी (आयु का) सागर पीकर (मृत्यु की) सर्पिणी अधिक बलवती हो गयी।

बारह बरस बालापन बीते, बीस बरस कछु तप न कीओ।
तीस बरस कछु देव न पूजा, फिर पछिताना विरधि भइओ।
मेरी मेरी करते जनमु गइओ, साइर सोषि भुजं बलिओ॥[1]

(संत कबीर, रागु आसा 15)

डॉ. वर्मा के अनुसार यदि यही कबीर का जीवन है तो उनसे निवेदन और प्रश्न हैं—

1. जिस आदमी ने अपने जीवन में किसी का भला नहीं किया, जिसने अपना जीवन कौड़ी के मोल व्यर्थ गंवा दिया, जो अपनी करनी पर पछताते-पछताते बूढ़ा हो गया और मेरा-मेरा, हाय-हाय में जिसका जीवन बीत गया, क्या उसे संत कहा जा सकता है? क्या संत का यही लक्षण है? यदि नहीं, तो डॉ. वर्मा किस आधार पर कबीर को संत कबीर कहते हैं? डॉ. वर्मा के संत के लक्षण और परिभाषा क्या हैं?

2. जो कबीर आजीवन बाहरी देवी-देवता और उनकी पूजा का, कर्मकांड का मखौल उड़ाते रहे, वे यह पश्चाताप क्यों करेंगे कि मैंने तीस वर्ष तक किसी देवता की पूजा नहीं की? क्या वे तीस वर्ष के बाद देवता पूजने लग गये थे?

3. यदि बीस वर्ष की उम्र तक कबीर ने कोई साधना नहीं की तो वे क्या करते रहे? यदि उन्होंने बीस वर्ष के बाद साधना की थी तो उन्होंने शादी-विवाह कब किया जिसका वर्णन डॉ. वर्मा बड़े समारोहपूर्वक करते हैं?

एक ओर तो डॉ. रामकुमार वर्मा कबीर को महान क्रांतिकारी संत एवं विश्वकवि मानते हैं और लिखते हैं—"भारतीय साहित्य में संत कबीर एक क्रांतिदर्शी महाकवि और महामानव के रूप में मान्य हैं। उनकी वाणी में अपने समय की सीमाओं का अतिक्रमण कर सत्य से साक्षात्कार किया और मानव की सोई हुई चेतना को उद्‌बुद्ध कर एक ऐसे विश्वधर्म की रूप-रेखा का निर्माण किया जहां धर्म, जाति और सम्प्रदाय बहुत पीछे छूट जाते हैं।"[2] दूसरी ओर कबीर को लालची, ईर्ष्यालु, परायी स्त्रियों के प्रति आकृष्ट, दूसरों की निंदा करने वाला, संत-सत्संग से विमुख तथा लंपट-विलासियों का साथी; काम, क्रोध, माया-मद से घिरा, दया-धर्म-गुरु-सेवा से विमुख बताते हैं। देखें डॉ. रामकुमार वर्मा के ही शब्दों में कबीर की आत्मकथा का वर्णन—

"संत कबीर ने राम के प्रति निश्छल भक्ति की बात कही है किन्तु संसार की परिस्थितियां इतनी आकर्षक हैं

1. कबीर एक अनुशीलन, पृ. 45-46।

2. कबीर एक अनुशीलन, पृ. 9, विषय प्रवेश।

कि मन माया के चक्रव्यूह में घिर ही जाता है। जब भक्त अपनी असमर्थता का अनुभव करता है तो वह पश्चाताप से भर जाता है। अपने पूर्व जीवन की अपूर्णता के लिए वह आत्मनिंदा से भर जाता है और पश्चाताप करने लगता है। मध्यकालीन प्रायः सभी संतों ने प्रायश्चित द्वारा अपने कामुकतापूर्ण जीवन के लिए प्रभु से क्षमा मांगी है और उनकी भक्तवत्सलता की दुहाई दी है। संत कबीर ने भी इसी मनःस्थिति में अपने प्रभु से क्षमा मांगी है। एक पद में वे कहते हैं—

ओ गोविन्द! हम ऐसे अपराधी हैं कि जिस प्रभु ने मेरे इस शरीर में प्राण दिये, उसी की भावपूर्ण भक्ति मैंने नहीं साधी। दूसरे के धन (का लालच) दूसरे के शरीर (से ईर्ष्या) दूसरे की स्त्री (के प्रति आर्कषण) और दूसरे की निंदा का कलंक मुझसे नहीं छूटा और इसी कारण आवागमन का चक्र कभी नहीं टूटा। जिस घर में संतों द्वारा हरि की कथा होती थी वहां मैं एक क्षण के लिए भी नहीं गया और मैंने लंपट विलासी मतवाले (विचार रूपी) चोरों के साथ ही नित्य निवास किया। काम, क्रोध, माया, मद और मत्सर की संपत्ति ही मेरे पास रही। दया, धर्म और गुरु की सेवा करने का विचार मैंने स्वप्न में भी नहीं किया। कबीर कहते हैं कि हे भय दूर करने वाले दीनदयालु, कृपालु दामोदर और भक्त-वत्सल प्रभु! संकटों से मेरी रक्षा करो। मैं सदैव आपकी सेवा करूंगा।

गोविंद, हम जैसे अपराधी।
जिन प्रभु जीउ पिंड था दीआ, तिसकी भाउ भगति नहिं साधी॥
पर धन पर तन पर ती निंदा पर अपवादु न छूटै।
आवागमनु होत है फुनि-फुनि इहु परसंग न तूटै॥
जिहिघर कथा होत हरि संतन इक निमख न कीनो मैं फेरा।
लंपट चोर दूत मतवारे तिन संगि सदा बसेरा॥
काम, क्रोध माइआ मद मत्सर ये संपै मो पाहीं।
दइआ धरमु अरु गुरु की सेवा ए सुपनंतरि नाहीं॥
दीन दइआल क्रिपाल दामोदर भगत बछल मैं हारी।
कहत कबीर भीर जन राषहु हरि सेवा करउ तुम्हारी॥[1]
(संत कबीर, रागु रामकली 8)

यदि डॉ. रामकुमार वर्मा के अनुसार यही कबीर का चित्रण है तो कबीर एक संत तो क्या सामान्य संसारी आदमी से भी गये-गुजरे हैं और उनका जीवन सर्वथा असफल गया। जिसने दो-दो विवाह करके अनेक संतानों को जन्म दिया, जीवन में किसी का भला नहीं किया, जिसका जीवन कौड़ी के मोल चला गया, जिसने न साधना की और न किसी देवता की पूजा की, जो दूसरे के धन का लालची, ईर्ष्यालु, परायी स्त्रियों के प्रति आकृष्ट, पर निंदक, अपकारी रहा, जिसने क्षण भर भी सत्संग नहीं किया, जो दया, धर्म, गुरु से विमुख होकर काम, क्रोध, माया, मद-मत्सर से घिरा रहा तथा लंपट विलासियों का साथ करता रहा, वे कबीर किस आधार पर सुर, नर, मुनि, ब्रह्मा, विष्णु, महादेव—सबको चुनौती दे सके थे कि इन सबने अपने शरीर एवं मानव-जीवन रूपी चादर को मैली कर दी, किन्तु मैंने उसे इस प्रकार जतन से ओढ़ा कि उसे ज्यों का त्यों निर्मल-बेदाग ही रहने दिया? इस प्रश्न का उत्तर डॉ. रामकुमार वर्मा या उनकी लकीर पीटने वाले विद्वानों को आज नहीं तो कल देना ही होगा, क्योंकि डॉ. वर्मा स्वयं लिखते हैं—'संत कबीर को मैं महान, क्रांतिकारी विश्व कवि मानता हूं। उन्होंने अपनी सहज साधना से अपने 'राम' की अनुभूति प्राप्त की और समस्त मानवता को सत्य का दर्शन करा कर सत्पथ पर चलने के लिए प्रेरित किया। किन्तु अन्ततः उन्होंने मानव की भांति ही जन्म लिया और जीवन इस भांति व्यतीत किया कि उसे निष्कलुष ही समाप्त किया—'ज्यों की त्यों धरि दीनी चदरिया।'[2]

डॉ. वर्मा महोदय, आपने कबीर के जीवन का जो चित्र प्रस्तुत किया है उसके अनुसार तो कबीर के जीवन में कलुष ही कलुष, दाग ही दाग दिखाई पड़ रहा है, तब आप किस आधार पर कह रहे हैं कि उन्होंने जीवन को निष्कलुष व्यतीत किया। आपके 'कबीर एक अनुशीलन' को शुरू से आखिर तक पढ़ जाने के बाद यह कहीं से भी नहीं लगता कि जिस कबीर का चित्रण आपने किया है उसका जीवन कलुष से खाली निष्कलुष है। या तो जिस कबीर का चित्रण आपने किया है वह कबीर कोई दूसरा है और जिन्होंने यह कहा है कि 'ज्यों की त्यों धरि दीनी चदरिया' वे कबीर

1. कबीर एक अनुशीलन, पृ.45।

2. वही, पृ. 6, भूमिका।

कोई दूसरे हैं। सच क्या है इसे तो आप ही अच्छी तरह जानते रहे होंगे। परंतु नहीं, आपने काशी के उसी कबीर का चित्रण किया है जिनके लिए यह प्रसिद्ध है कि वे नीरू-नीमा जुलाहे दंपती के यहां पाले-पोषे गये या जो उनकी औरस संतान थे और जो आजीवन हिन्दुओं-मुसलमानों को और ढोंगी साधुओं को उनकी गलतियों, कुरीतियों, धार्मिक पाखंडों आदि के लिए फटकारते और ललकारते रहे। हां, आपने कबीर की चारित्रिक हत्या बखूबी ढंग से की फिर भी आप कबीर के प्रशंसक कहलाते रहे।

विद्वानगण कबीर साहेब के बारे में चाहे जैसा उलटा-सीधा लिखते रहें, उन्हें समाज कभी नहीं स्वीकारेगा। जाति, वर्ण, मत-मजहब, ईश्वर, ईश्वरीय ग्रंथ के नाम पर समाज का आर्थिक, बौद्धिक और शारीरिक शोषण करने वालों तथा मानव-मानव के बीच भेदभाव की दीवार खड़ी कर अपना स्वार्थ साधने वालों का कबीर साहेब ने जिस प्रकार खुलकर खंडन किया और तीव्र शब्दों में भर्त्सना की उसके कारण हिन्दू-मुसलमान दोनों के धर्मनेता उनके समय में और आज भी उनसे भले रुष्ट रहे हों और आज भी हैं, आम जनता तब भी उनके साथ थी और आज भी उन्हें उनकी वाणियों से ही धार्मिक पाखण्डों एवं मानसिक दासता से मुक्ति मिल सकती है। उनके निदाग-निष्कलुष जीवन, अखण्ड वैराग्य एवं कथनी-करनी-रहनी की एकता के कारण सभी धर्म-मतों के संत-साधक उनके समय में उन्हें संत शिरोमणि कहते-मानते रहे और आज के संत-साधक भी उन्हें संत शिरोमणि मानते हैं। सिद्धान्त और मान्यता अपनी जगह पर है। इनमें अंतर, भेद एवं विरोध रहा है और रहेगा। मुख्य बात है जीवन की रहनी, त्याग, तप, साधना। कबीर साहेब की सहज साधना, उज्ज्वल जीवन, कथनी-करनी-रहनी की एकता को कोई चुनौती नहीं दे सकता। जो चुनौती देगा वह मुंह की खायेगा। अपने त्याग-तप, साधना, निष्कलुष-निदाग जीवन और अपने 'राम' (घटवासी, हृदयनिवासी) पर अखंड विश्वास और उसमें स्थिति-लीनता के कारण ही वे कह सके थे—कहैं कबीर मैं पूरा पाया। और यह भी कि—दास कबीर जतन से ओढ़ी, ज्यों की त्यों धरि दीनी चदरिया।

—धर्मेन्द्र दास

मधुशाला

लेखक—बरसाइत दास महंत

मंदिर-मस्ज़िद भेद कराते
मेल कराती मधुशाला।
मंदिर-मस्ज़िद नफ़रत के घर
प्रेम का घर है मधुशाला॥ 1॥

वैर बढ़ाते मंदिर-मस्जिद
प्रेम बढ़ाती मधुशाला।
विष फैलाते ये देवालय
अमी बाँटती मधुशाला॥ 2॥

देवालय में कोलाहल है
मदिरालय में हालाहल।
प्रेम की हाला में सब हल है
नफ़रत में है हालाहल॥ 3॥

प्रेम-भाव है वहाँ धर्म है
भेद-भाव वहाँ धर्म कहाँ?
जहाँ धर्म है वहाँ कृष्ण हैं
जहाँ कृष्ण कल्याण वहाँ॥ 4॥

मन ही मंदिर मन ही मस्ज़िद
मन ही तो है मधुशाला।
मन को समझो गिरजाघर तुम
मन को समझो गुरुद्वारा॥ 5॥

मन की इस मधुशाला में तुम
पी लो प्रेम की मृदु हाला।
सुख पहुँचाएगी जन्नत का
शांति दिलाएगी हाला॥ 6॥

प्रेम का प्याला पीओगे तो
मित्र ! अमर हो जाओगे।
नफ़रत का घुँट पीओगे तो
घुट-घुट कर मर जाओगे॥ 7॥

प्रेम की हाला बाँटोगे तो
जग बन जाएगा मधुशाला।
नफ़रत का विष घोलोगे तो
हो जाएगा मुँह काला॥ 8॥

संत वचनामृत

लेखक—श्री कन्हैया सिंह बिशेन

1. धन-वैभव प्रारब्ध की देन है। जब तक उसका भोग शेष है तब तक कोई कैसे उसे छीन सकता है। इसलिए दूसरे के धन-वैभव को देखकर ईर्ष्या नहीं करनी चाहिए।

2. यदि संसार के मार्ग में चलना हो तो सिर के बोझ को हलका करो और परमार्थ पथ पर चलना है तो मन को हलका कर लो।

3. लोग पहले पाप से धन इकट्ठा करते हैं, फिर उसी धन को धर्म-कार्य में खर्च करते हैं। यह तो शरीर को कीचड़ से पोतना, फिर विशुद्ध जल से स्नान करना जैसा ही है। पुण्य के लिए पाप का धन नहीं इकट्ठा करना चाहिए।

4. सच्चा सत्संग श्रोता को मनन की प्रेरणा देता है, सोच को गम्भीर बनाता है और सत के प्रति प्रेम-श्रद्धा जगाता है।

5. धन और मान में सच्चा सुख नहीं है। दीन-दुखी, माता-पिता एवं संतों की सेवा से ही सच्ची सुख-शान्ति मिलती है।

6. संत के जीवन में चमत्कार की खोज या अपेक्षा करने वाले लोग संतत्व के बारे में कुछ समझते-जानते ही नहीं हैं।

7. पूर्ण प्रसन्न वही रह सकता है जिसके पास कुछ भी न हो फिर भी अभाव का भान न हो।

8. दीपक आज जलायें और अंधेरा दो दिन बाद जाये—ऐसा कैसे हो सकता है। सच्चे सत्संग का लाभ तत्काल ही परिलक्षित होना चाहिए।

9. साधकों के लिए इल्लत (बीमारी), किल्लत (तंगी) और जिल्लत (बदनामी) वैराग्य उत्पन्न कर, अहंकार को समाप्त करती है और मन को निर्मल, सरल बनाने का अवसर प्रदान करती है।

10. धर्म का अनुयायी सत्य को अपनी जेब में नहीं रखता है। शब्दों से चिपके रहना दुख के कारण और निवारण में बाधा है।

11. जिस तरह स्वर्णकार सोने को तपाकर, घिसकर, हर तरह से परखकर उसकी शुद्धता को स्वीकार करता है, उसी तरह साधक को तथाकथित धार्मिक शिक्षाओं को रोजमर्रा के जीवन की कसौटी पर कसकर स्वीकार करना न्यायोचित और न्यायसंगत होता है।

12. आज जो पात्र नहीं है, वह कल हो सकता है और जो आज पात्र है वह कल अपात्र हो सकता है, क्योंकि ऐसा कुछ भी नहीं जो स्थायी है।

13. एक चित्र कैमरा से बनता है, दूसरा एक्सरे से। साधकों को चित्रों का गहन अनुशीलन विवेकी बनाता है।

14. जो किसी भी दशा में किसी को भी दोषी नहीं देखता है, वही सच्चा साधु है।

15. यदि कोई चट्टान बीस प्रहारों के बाद टूटती है, तो ध्यान रहे कि विगत उन्नीस प्रहारों का प्रभाव ही बीसवें प्रहार में चट्टान को तोड़ने में समर्थ हुआ है।

16. भोगों का संग्रह दुखों का मूल कारण माना गया है। तालाब का संग्रहीत जल प्रदूषित और गन्दा हो जाता है, सुस्वादिष्ट भोजन का उदर में अधिक संग्रह ही अजीर्ण, गैस, कब्ज पैदा कर दुखी बनाता है।

17. सुख सम्पन्नता का मोहताज नहीं है, वह तो हमारी सोच और संतुष्टि का हमराही है।

18. छोटा बनने से समस्या रूपी सुरसा के मुख में घुसकर उससे निकलना आसान हो जाता है।

19. गाय की थनों में चिपटी जोंकें 'दूध' न पीकर 'रुधिर' ही पीती हैं। इसी तरह जो हर जगह बुराई देखता है, उसी की चर्चा करता है और उसी में रमा रहता है, वह बहुत अभागा है।

20. आदमी एक है भूख अनेक है और यह भूख मरते दम तक नहीं मिटती है।

21. बैंक का चौकीदार और कैशियर दोनों के पास रुपया पड़ा है, परन्तु दोनों में अन्तर है। दोनों व्यय नहीं करते। दोनों ड्यूटी के बाद ही चिन्तामुक्त होकर रहते हैं। जो इकट्ठा करके व्यय नहीं करते और जिनके पास इकट्ठा करने को कुछ नहीं—दोनों क्रियात्मक रूप से समान हैं।

22. मन को निर्मल बनाकर ही अखण्ड आनन्द और सुख प्राप्त किया जा सकता है।

23. हमारी उम्र बीत जाती है और परिवार (तन-मन) का झगड़ा कभी समाप्त नहीं होता है।

24. दुनिया में केवल मनुष्य ही एक ऐसा प्राणी है जो मानसिक चिन्ताओं के कारण पागल होता है, अन्य प्राणियों के पागलपन का कारण बाहरी होता है, आन्तरिक नहीं।

25. केवल आत्मसंतुष्ट व्यक्ति ही कृतकृत्य हो सकता है, क्योंकि वह प्रलोभनों से दूर रहता है और उसकी सोच सकारात्मक होती है और दृष्टि निर्मल।

26. दुखों का कारण मन की मलिनता ही है। उसे दूर करने का निरन्तर प्रयास करते रहना चाहिए। वास्तव में मन, वाणी और कर्मों की निर्मलता ही ईश्वर की सच्ची पूजा है।

27. जब तक आदमी जवान रहता है, स्वार्थ की पूर्ति होती है, तब तक सब अच्छा लगता है। यहां तक कि जमाना भी अच्छा लगता है। वही आदमी जब रोगी, बीमार या वृद्ध हो जाता है तब वह जमाना खराब होने का रोना रोता है और उसे सभी लोग स्वार्थी और दुश्मन लगते हैं।

28. मजहबी ईश्वर की अवधारणा धार्मिक ठेकेदारों की ढाल है, जो समाज और व्यक्ति पर अपनी मान्यताएं थोपती हैं।

29. जैसे-जैसे सभ्यता बढ़ती जाती है, मनुष्य में सदाचार का नाश होता जाता है, क्योंकि सभ्यता के साथ छल, कपट, धूर्तता छाया की भांति लगे रहते हैं।

30. अपने उपदेश को अनुभव और आचरण में उतारने वाला उपदेशक ही समाज कल्याण का प्रेरणास्रोत होता है।

31. स्थानों की कल्पना तथा परिवर्तन ने बहुतों को धोखा दिया है।

32. संसार में जो जितना सह सकता है, वह उतना महात्मा है।

33. प्राणघात, चोरी और व्यभिचार—ये तीन शारीरिक पाप हैं; असत्य, निन्दा, कटु और व्यर्थ भाषण ये वाणी के पाप हैं; दूसरों के अनिष्ट की इच्छा तथा सत्य, अहिंसा, दया, दान में अश्रद्धा, ये मानसिक पाप हैं।

34. भले और पुण्यात्मा पुरुषों को जो कुछ करना होता है, वह स्वयं अपने भीतर तय कर लेते हैं।

35. अपने विचारों पर निर्भर न रहकर दूसरों के विचार सुनने के लिए तैयार रहना चाहिए, क्योंकि ऐसा कोई भी नहीं है जो सभी चीजों को पूर्णतः जानता हो। ज्ञान की कोई सीमा नहीं है।

36. अभिमान/अहंकार अनर्थों का मूल है और रूप की लालसा काली नागिन।

37. जैसे फल के बड़े होने पर फूल अपने आप गिर जाता है, वैसे देवत्व के बढ़ने से नरत्व नहीं रहता।

38. संतों की सेवा, उपदेशों का श्रवण, आचरणों का अनुकरण सच्ची सुख-शान्ति प्राप्त करने का एकमात्र उपाय है। ❑

तातैं कहिए लोकाचार,
वेद कतेब कथैं ब्यौहार।
जारि बारि करि आवे देहा,
मूवाँ पीछे प्रीति सनेहा।
जीवत पित्रहि मारहि डंगा,
मूवाँ पित्र ले घाले गंगा।
जीवत पित्र को अन्न न खिलावै,
मूवा पीछे पिंड भरावै।
जीवत पित्र कूँ बोले अपराध,
मूवा पीछे देहि सराध।
कहैं कबीर मोहि अचरज आवे,
कउवा खाइ पित्र क्यूं पावे।

बीजक चिंतन

बाहर ब्रह्म की कल्पना में क्यों भटकते हो?

शब्द-94

कहो हो निरंजन कौने बानी ॥ 1 ॥
हाथ पाँव मुख श्रवण जिभ्या नहिं, का कहि जपहु हो प्रानी ॥
ज्योतिहि ज्योति ज्योति जो कहिये, ज्योति कौन सहिदानी ॥
ज्योतिहि ज्योति ज्योति दै मारै, तब कहु ज्योति कहाँ समानी ॥
चार वेद ब्रह्मा जो कहिया, उनहुँ न या गति जानी ॥
कहहिं कबीर सुनो हो सन्तो, बूझो पण्डित ज्ञानी ॥

शब्दार्थ—निरंजन = निर्गुण ब्रह्म। बानी = वाणी, वर्ण, चमक, स्वरूप। सहिदानी = निशान, पहचान। दै मारै = समस्त सृष्टि का प्रलय होना। गति = दशा।

भावार्थ—कहो हे भाई ! निर्गुण ब्रह्म का क्या स्वरूप है? ॥ 1 ॥ कहते हो कि उसके हाथ, पैर, मुख, कान, जीभ आदि कुछ नहीं है, उसका कोई आकार नहीं है, तब हे मनुष्यो ! क्या नाम लेकर उसका जप करते हो? ॥ 2 ॥ यदि कहो कि वह केवल ज्योतिस्वरूप है और चांद, सितारे, सूर्य आदि समस्त ज्योतियों का कारण है, तो चांद-सितारे आदि तो दिखते हैं, परन्तु तुम्हारी ब्रह्म-ज्योति की क्या पहचान है? ॥ 3 ॥ तुम कहते हो कि चांद-सितारे आदि सारी ज्योतियां प्रलयकाल में ब्रह्मज्योति में मिल जाती हैं; परंतु थोड़ा विचार करो कि तुम्हारी मानी हुई ज्ञानस्वरूप ब्रह्मज्योति में ये भौतिक ज्योतियां कैसे समा जायेंगी? ॥ 4 ॥ जिस ब्रह्मा ने चारों वेदों का व्याख्यान किया है, वे भी इस झमेले को नहीं समझ सके ॥ 5 ॥ कबीर साहेब कहते हैं कि हे सन्तो ! सुनो, ब्रह्मज्ञान का दावा करने वाले इन पंडित-ज्ञानियों से इसके विषय में पूछो। अथवा कबीर साहेब सन्तों को तो केवल अपनी बातें सुना देते हैं जिन्हें संत पहले से ही जानते हैं, परन्तु वे पंडित तथा ज्ञानियों को राय देते हैं कि तुम लोग विनम्रतापूर्वक इस विषय को संतों से समझने का प्रयास करो ॥ 6 ॥

व्याख्या—कबीर साहेब धार्मिक क्षेत्र में एक क्रांतिकारी पुरुष हैं। वे हर बात पर तर्क की कसौटी लगाते हैं। अपनी आत्मा से अलग ब्रह्म की कल्पना कर हम भ्रम पैदा करते हैं। लोग कहते हैं कि हमारी आत्मा से अलग एक ब्रह्म है। वह निर्गुण है; निराकार है; मन, बुद्धि, वाणी से परे है। प्रश्न होता है कि जब वह हमारी आत्मा से अलग है और मन, बुद्धि, वाणी से भी परे है तब उससे हमारा सम्बन्ध होना ही असम्भव है। कहा जाता है कि वह अनुभव से जाना जाता है, परन्तु अनुभव में तो वही आता है जो मन, बुद्धि, वाणी में आये। जिसे हम अपनी इन्द्रियों तथा मन से कभी नहीं ग्रहण कर सकते, उसका हमें कभी अनुभव नहीं हो सकता। इसलिए कबीर साहेब ब्रह्मज्ञानियों पर व्यंग्य करते हुए उनसे पूछते हैं कि कहो हो ब्रह्मज्ञानी ! निर्गुणब्रह्म किस रूप में है या उसका किस वाणी में वर्णन करते हो? जिसके हाथ-पैर आदि कोई चिह्न नहीं है, जिससे आज तक तुम मुलाकात नहीं कर सके हो, जिसे देख नहीं सके हो, जान नहीं सके हो, क्या कहकर उसका जप करते हो?

"ज्योतिहि ज्योति ज्योति जो कहिये, ज्योति कौन सहिदानी।" ब्रह्मज्ञानी कहते हैं कि वह तो केवल ज्योतिस्वरूप है। वे यह भी कहते हैं कि संसार की सारी ज्योतियां उसी से पैदा हुई हैं। ये सितारे, ये चांद-सूरज सब ब्रह्मज्योति के कार्य हैं। ब्रह्म इन सबका कारण है। परन्तु यह बात अजीब है ! जो तुच्छ कार्य है वह तो दिखता है और जो महान कारण है वह दिखता ही नहीं। श्री निर्मल साहेब की भाषा में कहें तो कहना होगा "लहर दीख पड़ती समुंदर न दिखते। ऐसे अचम्भों को वेदों में लिखते॥" लहर तो दिखाई दे और समुद्र न दिखाई दे यह बात कैसे समझ में आवे? सूरज-सितारे आदि की ज्योति दिखाई दे, जो तुच्छ कार्य हैं और जो इन सबका कारण बड़ी ज्योति ब्रह्म है वह दिखाई ही न दे, तो उस पर कैसे विश्वास किया जाये ! फिर तुम्हारी ब्रह्मज्योति की क्या पहचान है? उसे किस चिह्न से जाना जाये?

"ज्योतिहि ज्योति ज्योति दै मारै, तब कहु ज्योति कहाँ समानी।" कबीर साहेब कहते हैं कि तुम्हारे कथनानुसार जब ब्रह्म सारी ज्योतियों को 'दे मारेगा' अर्थात जब वह सबका प्रलय कर देगा तब ये ज्योतियां कहां समायेंगी, किसमें लीन होंगी? ब्रह्मज्ञानी कहते हैं कि एक दिन महाप्रलय होता है, उस समय सारा संसार ब्रह्म में लीन हो जाता है। साहेब कहते हैं कि तुम ब्रह्म को ज्ञानज्योति कहते हो और सूरज-सितारे आदि जड़-ज्योति हैं, तो जड़ एवं भौतिक जगत चेतन एवं अभौतिक तत्त्व में कैसे लीन हो जायेगा? वस्तुतः न चेतन जड़ में लीन हो सकता है और न जड़ चेतन में। जड़ और चेतन एक दूसरे से सर्वथा अलग हैं एवं दोनों अपने में मौलिक पदार्थ हैं। चेतन साक्षी, द्रष्टा एवं ज्ञाता है और जड़ साक्ष्य, दृश्य एवं ज्ञेय है, तो दोनों एक कैसे हो जायेंगे?

इसके बाद कबीर साहेब बहुत बड़ी चुनौती देते हैं "चार वेद ब्रह्मा जो कहिया, उनहुँ न या गति जानी।" वेद अनेक ऋषियों की रचनाएं हैं, परन्तु यह विश्वास है कि ब्रह्मा सबके ज्ञाता थे। साहेब कहते हैं कि जिस ब्रह्मा ने चारों वेदों का व्याख्यान किया है, वह ब्रह्मा भी ब्रह्म के विषय में कुछ नहीं जानता। आत्म-भिन्न ब्रह्म की तो लोग केवल कल्पना करते आये हैं। अतएव वह केवल अनुमान एवं कल्पना का विषय है, अनुभव का विषय नहीं। अनुभव का विषय तो निज चेतनस्वरूप एवं आत्माराम है।

"कहहिं कबीर सुनो तो सन्तो, बूझो पण्डित ज्ञानी।" साहेब कहते हैं कि पण्डितों और ज्ञानियों को बड़ा घमण्ड है कि हम ब्रह्म को जानते हैं। वे उसके विषय में बड़ी लम्बी-चौड़ी बातें करते रहते हैं। इसलिए इनसे पूछना चाहिए कि आप लोग उस ब्रह्म को किस साधन से जाने हैं? जानने के साधन तो सबके पास केवल मन और इन्द्रियां हैं और उनसे वह जाना नहीं जा सकता, फिर उसे वे कैसे जान गये? इसलिए केन उपनिषद् का ऋषि लिखता है कि ब्रह्म को जो नहीं जानता वही जानता है तथा जो जानता है वह नहीं जानता; क्योंकि वह जानने वालों के लिए अज्ञात है और नहीं जानने वालों के लिए ज्ञात है।[1] अर्थात वह जाना ही नहीं जा सकता।

"कहहिं कबीर सुनो हो सन्तो, बूझो पंडित ज्ञानी।" इस पंक्ति को हम इस ढंग से भी समझ सकते हैं कि हे संतो! सुनो और हे पंडितो तथा ज्ञानियो! तुम समझने का प्रयत्न करो। अर्थात संत तो समझते हैं कि ब्रह्म, ईश्वर, परमात्मा, खुदा, गॉड चाहे जितने परमार्थ तत्त्व के नाम लिये जायें उनकी चरितार्थता व्यक्ति की अपनी चेतना में ही है। यह जीव, यह आत्माराम ही परमात्मा है। परन्तु पंडित-ज्ञानी लोग अपनी आत्मा की सुधि भुलाकर बाहर ब्रह्म खोज रहे हैं, अतएव कबीर साहेब उनसे कहते हैं कि हे पंडितो तथा ज्ञानियो! तुम लोग विनम्र होकर संतों की सेवा, सत्संग आदि करके ब्रह्म को समझने की चेष्टा करो।

यदि हम जड़-प्रकृति को उसके अपने अन्तर्निहित गुण-धर्मों से संपन्न स्वतन्त्र समझ पाते तो उसको चलाने के लिए हमें एक असमीक्षात्मक ब्रह्म की कल्पना न करनी पड़ती। ये चांद-सूरज, ये असंख्य तारे तथा विश्व-ब्रह्मांड अपने गुण-धर्मों से चल रहे हैं। ये जिन गुण-धर्मों से चल रहे हैं वे इनमें अन्तर्निहित हैं, स्वभावसिद्ध हैं। सारे संसार का कभी प्रलय नहीं होता, किन्तु सब समय यह संसार परिवर्तनशील बना रहता है। यह संसार किसी निराकार निर्गुण चेतन का कार्य नहीं है, किन्तु यह स्वयं सत्य जड़-पदार्थ है। इसे कोई ब्रह्म चला नहीं रहा है, किन्तु यह स्वतः चल रहा है। इस जड़ प्रकृति से सर्वथा अलग असंख्य चेतन हैं, जो ज्ञानस्वरूप हैं। व्यक्ति का आत्मस्वरूप ही ब्रह्म है, राम है। इससे अलग कहीं ब्रह्म नहीं मिलेगा।

❑

---

1. यस्यामतं तस्य मतं मतं यस्य न वेद सः।
अविज्ञातं विजानतां विज्ञातमविजानताम्॥
(केन उपनिषद् 2/3)

भिखारिन

लेखक—दीनेन्द्र दास

इंजीनियर आकाश कार से उतरकर सीधे ड्राइंग रूम में पहुंचे। हाथ में ली हुई मोटी फाइल उन्होंने मेज पर रखी और सोफे पर बैठकर जूता उतारने लगे। उसी समय उनकी दृष्टि सामने वाले कमरे में गुमसुम बैठे बेटा निर्मल और बेटी नमिता पर गयी। उन्हें लगा जरूर दोनों में झगड़ा हुआ होगा। हो सकता है कुसुम ने इनकी पिटाई भी की हो। जरा आवाज ऊंची कर इंजीनियर साहब वहीं से बोले—"क्या बात है बेटी नमिता! तुम दोनों गुमसुम क्यों बैठे हो...जरूर तुम्हारा निर्मल से झगड़ा हुआ होगा।"

नमिता ने कोई जवाब नहीं दिया। अन्य दिनों की तरह निर्मल भी दौड़कर पापा के पास नहीं आया। तब तक पत्नी कुसुम भी वहां आ गयी। आकाश ने उससे पूछा—"ये दोनों गुमसुम क्यों बैठे हैं? तुमने इनकी पिटाई तो नहीं की है?"

"आप हाथ-मुंह धो लें। चाय लेकर आती हूं, फिर बताती हूं।" कहकर कुसुम किचन में चली गयी।

आकाश ने गौर किया कि कुसुम के चेहरे पर आज कोई उल्लास नहीं है। वह भी कुछ झल्लायी हुई दिख रही है। वे बच्चों के पास पहुंचे। बेटी नमिता को गले लगाया, निर्मल के सिर पर हाथ फेरा। नमिता से ही पूछा—"क्या हुआ बेटी, निर्मल से झगड़ा हुआ है?"

नमिता की रुलाई फूट पड़ी। कुछ जवाब नहीं दे पायी। निर्मल भी रोने लगा। रोते-रोते ही बोला "पापा! दादी...।"

निर्मल अपना वाक्य पूरा नहीं कर पाया। आकाश चौंके—"दादी...क्या हुआ दादी को,...कहां हैं दादी...?"

नमिता—"दादी कहीं चली गयीं...।"

"दादी कहीं चली गयीं...?" आकाश को आश्चर्य हुआ। नमिता के गालों पर लुढ़क आये आंसुओं को पोंछते हुए आकाश ने पूछा। सिसकती हुए नमिता बोली—"पापा! आज दोपहर में मम्मी और दादी में कुछ कहा-सुनी हुई थी। मम्मी ने दादी को गालियां दी... उन्हें धक्का भी दिया...घर से निकल जाने के लिए भी कहा...दादी देर तक रोती बैठी रहीं...मुझे और निर्मल को छाती से चिपकाकर प्यार किया। फिर वे एक हाथ में कपड़ों की पुटकी और दूसरे हाथ में कटोरा लेकर घर से निकल गयीं।"

आकाश को काटो तो खून नहीं। धम्म से वहीं दोनों बच्चों को चिपकाकर जमीन पर बैठ गये।

कुसुम अब तक ड्राइंगरूम में सोफे के सामने रखे टेबल पर नाश्ता लगा चुकी थी। आकाश के पास जाकर बोली—"चलिये चाय पी लीजिये ?"

आकाश ने कुसुम के अनुरोध को अनसुनी करते हुए पूछा—"मां कहां हैं...?"

"मुझे क्या पता! दोपहर से गायब है। अभी तक तो नहीं आयीं।"

"अब वो आयेंगी भी नहीं...।" आकाश ने गुस्से से दांत पीसते हुए कहा।

आकाश उठे। चाय की तरफ उसने देखा तक नहीं। कपड़े पहने और घर से बाहर निकल गये।

अब तक रात के बारह बज चुके थे। इस दरम्यान आकाश ने पूरा शहर छान मारा था। रेलवे स्टेशन, बस अड्डा, हनुमान मंदिर, गुरुद्वारा और अन्य सम्भावित ठिकानों में उसने मां को खोजा। इस बीच दो बार कुसुम से भी फोन पर मां के बारे में पूछा। कुछ पता नहीं चला। थककर आकाश पुलिस स्टेशन पहुंचा और वहां मां के गुम होने की सूचना दर्ज करवायी।

आकाश घर लौटा तो कुसुम दरवाजे पर ही जागती मिली। इस समय वह अपराधबोध से ग्रस्त थी। उसके चेहरे पर विषाद की रेखायें साफ देखी जा सकती थीं। आकाश ने कुसुम से कोई बात नहीं की। अपने कपड़े उतारे और बिस्तर पर लेट गया। नींद आने का तो कोई सवाल ही नहीं था। बचपन से लेकर अब तक मां की करुण कथा चलचित्र की भांति उसके मन-मस्तिष्क पर प्रकट होने लगी।

मां ने मेरे लिए कितना कष्ट सहा। चार साल का था तभी मेरे सिर से पिता का साया उठ गया था। तब मां रामदेई ने मेहनत-मजदूरी करके मुझे पाला-पोसा, पढ़ाया-लिखाया। इंजीनियरिंग की पढ़ाई के लिए खेत तक बेंच दिये। हाय! यह अभागा बेटा! देवी स्वरूपा उस मां की कोई कद्र नहीं किया। हे भगवान! मां पता नहीं कहां चली गयी? किस हाल में होगी वह इस समय?

आकाश को वे दिन याद आये जब वह पहले पहल स्कूल गया था। वह जुलाई का महीना था। स्कूल खुल गये थे। पीठ पर बस्ता लटकाये बच्चे स्कूल जाने लगे थे। आकाश का मन भी स्कूल जाने के लिए मचलने लगा। उसने भी जिद्द की, मां! मैं भी स्कूल जाऊंगा। रिंकू, पिंकू, पिंकी सब स्कूल जाते हैं। मां, मेरे लिए भी एक बढ़िया-सा बस्ता खरीद दो न! तब मां ने कहा था—"हां बेटा! तू जरूर स्कूल जायेगा।"

दूसरे दिन रामदेई ने आकाश के लिए पुस्तक कापी, पेन और बस्ता खरीद दिया था। वह प्रतिदिन स्कूल जाने लगा। वह कुशाग्र बुद्धि का था। पढ़ने-लिखने में बहुत होशियार। किसी पुस्तक को एक बार पढ़ लेता तो वह कंठस्थ हो जाता। हर क्लास में प्रथम आता। इन्टर प्रथम श्रेणी पास कर लेने के बाद एक रोज आकाश ने अपनी मां से कहा—"मां, मैं अब इंजीनियरिंग की पढ़ाई करना चाहता हूं, मुझे इंजीनियरिंग पढ़ने की अनुमति प्रदान करो।"

"बेटा! ठीक है। तुम जहां तक पढ़ोगे मैं पढ़ाऊंगी। चाहे मुझे पैसे के लिए मेहनत-मजदूरी ही करना पड़े। तुम्हारी खुशी में मेरी खुशी है, मेरे लाल!"

रामदेई ने जो कहा वह किया भी। मेहनत-मजदूरी से इंजीनियरिंग में दाखिला कैसे होता उसने अपना एक बीघा खेत बेच दिया। आकाश उन्मुक्त आकाश में उड़ने के लिए शहर चला गया। उसे सरकार से छात्रवृत्ति मिलने लगी। उसकी पढ़ाई ठीक ढंग से चलने लगी। वह छुट्टियों में घर आता तो बेटे को अपने पास पाकर मां निहाल हो जाती। उसकी पसंद का आलू का पराठा जरूर बनाती। मां-बेटा ढेर सारी बातें करते। मां भी सपने बुनती। वह अपने इंजीनियर बेटे के लिए सुन्दर सी सुघड़ बहू लायेगी। शहर में अपना घर होगा। कुछ वर्षों में बहू की गोद में गोल-मटोल सुन्दर-सुन्दर पोते-पोतियां होंगी। वह उन्हें पाकर निहाल हो जायेगी। उसके जीवन का संकल्प पूरा हो जायेगा।

पांच साल बाद आकाश इंजीनियर हो गया। एक बड़े शहर में उसकी पोस्टिंग भी हो गयी। शहर के एक बड़े घर में उसका रिश्ता भी पक्का हो गया। धूमधाम से उसका विवाह हुआ। घर में सुन्दर बहू को पा रामदेई निहाल हो गयी।

विवाह के बाद ही बेटा बहू को लेकर शहर चला गया। बहू दुबारा गांव नहीं आयी। हां, आकाश बीच-बीच में घर आकर मां को देख जाता। मां गांव में खुश थी। आकाश बार-बार मां से कहता कि वह शहर में अपना घर बनवा रहा है। घर बनते ही वह मां को यहां से बुला ले जायेगा। गांव की सारी सम्पत्ति बेच देगा।

आकाश को पहली सन्तान बेटी पैदा हुई। यह खबर जब मां रामदेई को हुई तो उनकी खुशी का ठिकाना नहीं रहा। वे जल्दी-से-जल्दी पोती को देखने के लिये लालायित हो उठी। बहू कुसुम को भी इस समय एक सहायिका की सख्त जरूरत थी। इस तरह मां रामदेई बेटे के पास आ गयी। नवजात शिशु की सेवा सुश्रुषा का पूरा जिम्मा उन्होंने अपने ऊपर ले लिया। दो साल बाद ही घर में दूसरी सन्तान भी आ गयी। मां रामदेई की व्यस्तता बढ़ गयी। वे दोनों पोती-पोते की देखरेख में दिन भर व्यस्त रहने लगी।

आकाश के परिवार में कुछ वर्ष तक तो सब कुछ ठीक चलता रहा। लेकिन सरकारी तंत्र में फैले भ्रष्टाचार से वह अपने को बचा नहीं सका। भ्रष्टाचार का दलदल होता ही ऐसा है कि जो एक बार उसमें पैर रखता है तो धंसता ही चला जाता है। अब आकाश के घर रुपयों की बरसात होने लगी। उसे खर्च करने के लिए उसका ज्यादातर समय घर के बाहर बीतने लगा। क्लब, पार्टी, जुआ, शराब उसके शौक बन गये। कुसुम तो बड़े घर की बेटी थी ही उसका शाही खर्च तो बढ़ना ही था।

बेटा-बहू की बदली मनोवृत्ति के कारण मां की उपेक्षा शुरू हो गयी। कुसुम को अब वह भार लगने लगी। अकसर कुसुम सास को ताने मारती। कभी साफ-सफाई को लेकर, कभी खान-पान को लेकर और कभी खांसने-खखारने को लेकर।

एक दिन रामदेई बैठक में बैठी थी। उसी समय कुसुम की सहेली रूपा आ गई। सहेली के आते ही कुसुम ने रामदेई को जोर से डांटती हुई कहा—"जब देखो तब यहीं बैठी रहती हो। यहां लोग आते-जाते रहते हैं। आज से इस बैठक रूम में मत बैठना समझी!" हाथ से इशारा करते हुए कहा—"जाओ अपने कमरे में।"

रूपा बोली—"कोई बात नहीं! माता जी को बैठने दीजिए न!"

रामदेई चुपचाप अपने कमरे में चली गई।

रूपा बोली—"यह कौन है।"

कुसुम बोली—"यह बुढ़िया नौकरानी है।" रामदेई अपने कमरे से बहू की बातें सुनी तो उसे मानो सांप छू गया। वह अन्दर-ही-अन्दर सुबक-सुबक कर रोने लगी।

इसी तरह एक दिन रामदेई अपने पोते-पोती से बातें कर रही थी। कुसुम अचानक आ गई और बोली—"देखो, आज से मेरे बच्चों से बातें मत करना, नहीं तो इनकी अंग्रेजी बिगड़ जायेगी।"

एक दिन पूरा परिवार एक साथ बैठकर भोजन कर रहा था। अचानक रामदेई को खांसी आ गई। कुसुम बोल पड़ी—"भोजन के समय खांसती-खखारती रहती हो। नाक से पानी, मुंह से लार, आंख से आंसू गिरता रहता है। इसलिए कल से हम लोगों के साथ बैठकर भोजन न करना। अच्छा! कल से तुम ऊपर वाले कबाड़ रूम में रहोगी, वहां तुम्हारे लिए भोजन पहुंचा दिया जायेगा।"

रामदेई बहू के अपमानजनक शब्दों का जहर घुटक कर रह गई। ज्यादा दुख तो इस बात का हुआ कि बेटे ने उसे एक शब्द भी नहीं कहा! मानो उसका मौन समर्थन कर रहा हो।

एक बार नमिता दादी के लिए दूध लेकर जा रही थी। कुसुम ने—"उसे दूध पचता नहीं है, अब दूध उसे मत देना।" कहकर गिलास हाथ से छीन लिया।

निर्मल को एक बार बिस्कुट और फल देते देख लिया तो कुसुम ने उसे भी डांटा "मेरी आज्ञा के विरुद्ध तुम लोग उस बुढ़िया को कुछ भी नहीं दोगे, बीमार पड़ेगी तो सेवा कौन करेगा?" निर्मल को अपनी मां का व्यवहार बहुत बुरा लगा लेकिन बेचारा बोल नहीं सकता था।

अपनी मां का व्यवहार निर्मल और नमिता को अच्छा नहीं लगता था। नमिता दादी मां के लिए गरम पानी दे आती, रसोई घर में कोई अच्छी चीजें बनती तो जरूर पहुंचाती। निर्मल मार्केट से दादी मां के लिए बिस्कुट, फल व मिठाइयां लाता। जब इस बात को कुसुम जान पायी तब उसने दोनों को डांटा और कहा—"तुम लोग मेरी आज्ञा के विरुद्ध मनमानी करते हो। यदि आज से उस बुढ़िया के लिए कुछ भी लाकर दोगे तो मैं तुम दोनों का बुरा हाल कर दूंगी। मेरी आज्ञा के बिना उसके कमरे में भी नहीं जाओगे।" अपनी मां के लाख मना करने पर भी निर्मल और नमिता दादी मां के प्रति अपना फर्ज अदा करना नहीं भूलते थे। एकदिन रामदेई की सुधि लेने के लिए उसका भाई जयदेव आ गया। रामदेई को कबाड़खाना में देखकर समझ गया कि आकाश कितना नालायक निकला। बहू एक गिलास पानी देना तो दूर फूटी आखें भी देखना नहीं चाहती। मेरी बहन यहां घुट-घुट कर जी रही है।

जयदेव ने रामदेई से कहा—"बहन! अब तुम्हें यहां रहना ठीक नहीं है। यहां मैं देखता हूं कुत्ते-बिल्ली का सम्मान है लेकिन तुम्हारा सम्मान नहीं है। लगता है तुम्हें ये लोग दो रोटी भी नहीं देंगे। तुम्हारा स्वास्थ्य भी काफी गिर चुका है। यदि जीजा जी जीवित होते तो ऐसी स्थिति कभी नहीं आती। इस दशा में तुम्हें देखकर मुझे बड़ा दुख होता है। कल सुबह मेरे घर चलने के लिए तैयार रहना।" रामदेई बोली—"मैं कहीं नहीं जाऊंगी भैया! अपना घर अपना ही होता है। बहू-बेटे चाहे जितनी गलती करें वे मुझे प्राणों से प्रिय हैं। मैं कहीं चली जाऊंगी तो बहू-बेटे की बदनामी होगी। अब दुनिया में कितने दिन रहना है?"

जयदेव का आना रामदेई के लिए काल बन गया। आज सुबह कुसुम उसे इसी बात के लिए ताने दे रही थी कि तुमने मेरी शिकायत की है। रामदेई ने बार-बार सफाई दी कि उसने बेटे और बहू की कोई शिकायत नहीं की। लेकिन कुसुम तो लड़ने पर उतारू थी। एक मौका ऐसा भी आया जब रामदेई को गरियाते-गरियाते कुसुम ने उसे धक्का दे दिया। रामदेई गिर पड़ी। थोड़ी

देर जमीन पर पड़ी रही। फिर उठकर लंगड़ाते-लंगड़ाते अपने कबाड़खाने वाले कमरे में गयीं, कुछ कपड़ों की एक पोटली बनाई। अपने एल्युमिनियम के कटोरे को भी रखा जिसे वह गांव से लायी थी। वहां से निर्मल और नमिता के पास गयीं। दोनों बच्चों को छाती से लगाई और फफककर रोते हुए बोली—"अब मैं तुम लोगों से दूर जा रही हूं। मेरा आशीर्वाद तुम्हारे साथ रहेगा, तुम लोग हर पल सुखी रहो।" दोनों बच्चे भी दादी मां! दादी मां! कहते-कहते फूट-फूट कर रो पड़े और रामदेई का एक-एक हाथ पकड़ लिये और कहे "हमें छोड़कर कहीं न जा दादी मां! हम आपके बिना कैसे जी पायेंगे।" रामदेई ने दोनों बच्चों के आंसू पोंछे और अपनी साड़ी के एक पल्लू से अपने आंसू पोंछी फिर दिल में पत्थर रखकर घर से निकल गयी। दोनों बच्चे रोते-बिलखते ही रह गये—"दादी मां! दादी मां!" कुसुम बैठक कक्ष में बैठे ताकती रही।

गेट के पास उसका पालतू कुत्ता बैठा था। उसकी आंखों से आंसू निकल रहे थे। वह रामदेई को देखकर अंगड़ाई लिया और पीछे-पीछे चलने लगा। रामदेई ने कुत्ते की पीठ पर हाथ फेरते हुए कहा—"झब्बू! बहू ने तो मुझे दुत्कार दिया। तुम्हारा प्रेम अगाध है। आज तुमने बता दिया कि इंसान से ज्यादा जानवर वफादार होता है। अब तुम घर लौट जाओ। मेरे लिए रोना मत। अच्छा! झब्बू।" झब्बू ने अपने सामने के दोनों पैर फैलाकर दादी मां को प्रणाम किया। दादी मां ने अपने हाथ से उसकी पीठ को सहलाया। झब्बू पूंछ हिलाते हुए घर वापस हो गया।

तब से अब तक तीन साल बीत चुके हैं। आकाश ने मां को खोजने का बहुत प्रयास किया लेकिन उनका कहीं पता नहीं चला। मां के जाने के बाद आकाश का स्वभाव बिलकुल बदल गया। होटलों, क्लबों और पार्टियों में जाना बन्द कर दिया। उसके पास जो भी समय बचता नगर के मंदिरों में निकल जाता। कभी इस मंदिर में और कभी उस मंदिर में। ऐसे समय में उसकी पत्नी कुसुम और बच्चे भी साथ होते। कुसुम का स्वभाव भी अब बिलकुल बदल गया है। वह अपने किये पर पश्चाताप करती रहती है। मंदिर में जाती है तो प्रार्थना करती है—"हे भगवान! एक बार मुझे उस देवी से मिला दो जिसका मैंने इतना अनादर किया है, जिसे घर से निकाला है। एक बार मैं उस देवी के चरणों में अपना सिर रखकर उससे माफी मांगना चाहती हूं।" यही हाल बच्चों का भी है। दादी के जाने के बाद महीनों वे सुबह-शाम रोते रहे। खाना न खाये। धीरे-धीरे जब सामान्य हुए तो कमरे में उन्होंने दादी का फोटो रख लिया। अब उस पर स्नान करने के बाद रोज फूल चढ़ाते हैं।

प्रयाग में कुंभ मेला लगा तो आकाश और कुसुम अपने को रोक नहीं पाये। बच्चों को साथ लेकर गंगा स्नान और मेला देखने का कार्यक्रम बन गया। बच्चे भी काफी खुश थे।

आज बसंत पंचमी थी, मेला पूरे उफान पर था। स्नानार्थियों के रेले लगातार एक के बाद एक संगम की ओर आगे बढ़ रहे थे। उसी एक रेले में आकाश, कुसुम, नमिता और निर्मल भी थे। सबने स्नान किया। गंगा मैया की पूजा-अर्चना की और बड़े हनुमान जी के दर्शन के लिए पीछे लौटे।

आकाश और कुसुम मंदिर की तरफ कुछ आगे बढ़ गये थे। नमिता, निर्मल की उंगली पकड़े सड़क के किनारे-किनारे दुकानों को देखती चल रही थी। उसी समय एक भिखारिन उनका रास्ता रोक कटोरा आगे बढ़ा दिया—"बेटा! एक रुपया भगवान के नाम पर....।" नमिता ने भिखारिन को देखा तो चौंक पड़ी। झुकी-कमर, सफेद बिखरे बाल, मैले-कुचैले कपड़े और, और हाथ में वही कटोरा जो कभी दादी के पास हुआ करता था। कहीं यह दादी तो नहीं। भिखारिन भी एकटक कभी नमिता और कभी निर्मल को देख रही थी। नमिता की निगाह भिखारिन की कलाई पर गई। गोदना से लिखे अक्षर 'रामदेई' साफ दिख रहे थे। वह दादी...! चिल्लाती हुई भिखारिन के पैरों पर गिर पड़ी। भिखारिन भी चिल्ला पड़ी 'अरे बिटिया नमिता और बेटा निर्मल...।" पागलों की तरह वह नमिता और निर्मल को चूमने लगी। अभी दादी और पोते-पोतियों का यह करुण मिलन चल ही रहा था आकाश और कुसुम भी वहां आ गये। 'मां' कहते हुए दोनों उस भिखारिन के पैरों पर गिर पड़े।

❑

प्रवचन

ईश्वर और उसका स्वरूप

(परम पूज्य गुरुदेव श्री अभिलाष साहेब जी द्वारा कबीर संस्थान, इलाहाबाद में ध्यान शिविर के अवसर पर दिनांक 20-08-2005 को सायं दिया गया प्रवचन।—प्रस्तुति श्री रामकेश्वर जी)

पूजनीय संत समाज, प्रिय सज्जनो तथा देवियो! हमारे सामने जो सत्ता है, वह क्या है, आज इसपर विचार किया जायेगा। जिसको हम "सत्ता", "होना" और "अस्तित्व" कहते हैं वह जड़-चेतनमय है। जड़ वह है जो न तो खुद को जानता है और न दूसरे को ही जानता है। चेतन वह है जो खुद को जानता है और दूसरे को भी जानता है। यही जड़ और चेतन के लक्षण हैं। गोस्वामी जी महाराज ने भी कहा है "जड़ चेतनहि ग्रंथि परि गई।" और गीताकार ने कहा है कि—"प्रकृतिं पुरुषं चैव विद्धयनादी उभावपि"—प्रकृति और पुरुष दोनों को अनादि जानो।

कपिल ने तो बहुत पहले ही प्रकृति और पुरुष कह दिया है। उसी को वेदान्ती लोग ब्रह्म और माया कहे हैं। कहने की शैली में अंतर है लेकिन तथ्य एक है। एक जड़ सत्ता है और एक चेतन सत्ता। ब्रह्मवादियों की माया की व्याख्या कुछ अलग है। जो जड़ सत्ता है वह निर्भ्रांत समझने में आती है लेकिन माया के विषय में बड़ी उलझन है। जड़ और चेतन दोनों सत्ताओं के मिलने से, जो कुछ हमें दिखाई देता है, उसका अस्तित्व है। इसका इस ढंग से संगठन कब हुआ, यह आज का विचारणीय विषय नहीं है।

भावनावादी मानते हैं कि ईश्वर ने सृष्टि बनायी लेकिन प्रश्न होता है कि ईश्वर ने सृष्टि क्यों बनायी? ऐसा प्रश्न करने पर कोई संतोषजनक उत्तर नहीं मिलता है। सर राधाकृष्णन ने लिखा है कि ईश्वर ने सृष्टि क्यों बनायी, इसका उत्तर आजतक दे नहीं मिला है और आगे भी दे नहीं मिलेगा। सरदार भगत सिंह ने लिखा है कि मैं दुनिया के समस्त ईश्वरवादियों से यह पूछता हूं कि ईश्वर ने दुनिया क्यों बनायी जबकि इस दुनिया में सर्वत्र पाप-ताप है। यहां सब जीव दुखी! दुखी!! दुखी!!! तब इस सृष्टि बनाने का क्या अर्थ है।

कुछ लोग कहते हैं कि ईश्वर ने करुणा करके दुनिया बनायी लेकिन करुणा तो तब होती है जब कोई दुखी हो। जब दुनिया नहीं थी तब कोई था भी नहीं। जब कोई था नहीं तब दुखी भी कोई नहीं था तब ईश्वर ने किस पर करुणा किया। करुणा होने से सृष्टि होती है कि सृष्टि होने से करुणा होती है—यह प्रश्न भारतीय दर्शन में है। यदि कहो कि करुणा से सृष्टि होती है तो इसका मतलब है लोग दुखी थे। उनके दुख को दूर करने के लिए ही सृष्टि बनायी गयी लेकिन जो दुखी थे वे कहां थे जिनके दुख को दूर करने के लिए सृष्टि बनायी गयी। इसलिए ईश्वर ने करुणा से सृष्टि बनायी यह बिलकुल बेकार की बात है। सृष्टि है और लोग दुखी हैं तब उनपर करुणा की जाती है। किसी के बच्चे हों, तभी बच्चों पर मां-बाप की करुणा होगी लेकिन जब बच्चे ही नहीं हैं तब करुणा किस पर होगी। इसका उत्तर जब नहीं दे मिलता है तब कहा जाता है कि ईश्वर ने सृष्टि तो केवल लीला के लिए बनायी लेकिन यह बात भी समझ में नहीं आती है।

लीला वही करता है जो अपूर्ण और असंतुष्ट है। जो पूर्णकाम और संतुष्ट है वह लीला नहीं करता। लेकिन मान लीजिए कि उसने लीला ही किया तो ऐसी लीला क्यों किया है जिसमें सब जीव दुखी हैं। कहावत वही हो गयी कि—"चिड़िया का जी जाय लड़िका का खिलौना"। कोई चिड़िया है उसको पकड़कर बच्चे नोंच रहे हों जिससे वह 'चें-चें' कर रही हो लेकिन बच्चों को उसमें आनन्द आ रहा है। ऐसी ही बात है। कहते हैं कि ईश्वर लीला कर रहा है लेकिन उसकी लीला से सब जीव दुखी हैं। इसलिए लीला करने की बात भी समझ में आती नहीं है।

सृष्टि किसने कब बनायी इसके विषय में दुनिया के प्राचीनतम शास्त्र ऋग्वेद में तमाम अटकलें हैं और वे सरल ढंग से हैं। वहां किसी सम्प्रदाय की दृढ़ता के लिए कि यह नास्तिक है और यह आस्तिक है, ऐसी बात नहीं है। लेकिन उसमें एक संदर्भ ऐसा है तथा और भी संदर्भ जगह-जगह हैं, जहां ऋषि कहते हैं—

को ददर्श प्रथमं जायमानमस्थन्वन्तं यदनस्था बिभर्ति।
भूम्या असुरसृगात्मा क्व स्वित् को विद्वांसमुप गात् प्रष्टुमेतत्॥

वे कहते हैं—पहले उत्पन्न होते हुए को किसने देखा। जो हड्डीरहित है, वह हड्डी वाले को धारण करके गतिशील है। उस हड्डीरहित वाले को निर्मित होते पहले किसने देखा? यह इसका शाब्दिक अर्थ है। इसका भावार्थ है कि सूक्ष्म प्रकृति स्थूल जगत को धारण करके गतिशील है। ये पेड़, पहाड़, पृथ्वी-भूमण्डल, चांद-सितारे, अनेक गोल-गोल खण्ड जो आकाश में घूम रहे हैं, ये "स्थन्वन्तम्" हैं यानी हड्डीयुक्त, पार्थिव, स्थूल हैं और प्रकृति "अनस्थः" है। वह हड्डीवाली नहीं है। वह तो बड़ी सूक्ष्म है लेकिन सूक्ष्म प्रकृति ने इस स्थूल जगत को धारण कर रखा है। उस सूक्ष्म प्रकृति को उत्पन्न होते किसने देखा। कपिल महाराज ने कहा है—"मूलेमूलाभावादमूलममूलम्"। मूल में मूल न होने से मूल अमूल होता है। पेड़ की जड़ होती है, जड़ की जड़ नहीं होती। मूल का मूल नहीं होता। जड़ और चेतन अमूल हैं, इनका कोई मूल नहीं है।

ऋषि कहते हैं—भूमि से "असु" और "असृक्" बने। असु का अर्थ है प्राण और प्राण से अर्थ है सूक्ष्म शरीर और असृक का अर्थ है रक्त और रक्त से अर्थ है स्थूल शरीर। इसका अर्थ होता है कि जमीन से असु और असृक् बने और इसका भावार्थ होगा—जड़ प्रकृति से सूक्ष्म शरीर और स्थूल शरीर बने यह बात तो समझ में आती है लेकिन "आत्मा क्व आसीत्'—आत्मा क्या है। आत्मा तो जड़ से बनेगा नहीं। इस बात को पूछने के लिए विद्वान के पास कौन जाता है। इस एक ही मंत्र में इतनी बढ़िया बात कही गयी है।

जो सूक्ष्म प्रकृति स्थूल जगत को धारण करके निरंतर गतिशील है, उसको उत्पन्न होते पहले किसने देखा है। यह मुख्य बात है। जड़ प्रकृति से प्राणियों के स्थूल-सूक्ष्म शरीर बन गये। यह तो समझ में आता है लेकिन आत्मा तो जड़ है नहीं। वह तो चेतन है फिर वह कहां से आ गया। इस चीज को समझने के लिए विद्वान के पास कौन जाता है। लोग तो पेट-धन्धे में ही लगे रहते हैं बस। यह अति महत्त्वपूर्ण प्रश्न है कि सूक्ष्म प्रकृति को उत्पन्न होते किसने देखा है। मतलब है कि यह सब समय से है। यह नित्य सत्ता है।

अगर कहो कि जड़-चेतन किसी चीज से पैदा हुए तो प्रश्न उठता है कि जिस चीज से जड़-चेतन पैदा हुए, वह चीज किससे पैदा हुई। फिर वह चीज जिससे पैदा हुई वह चीज किससे पैदा हुई। यही क्रम बराबर चलेगा और इसका न तो कोई समाधान निकलेगा और न कोई स्थिरता ही रहेगी। जड़-चेतन दोनों नित्य हैं और उनमें गुण-धर्म हैं और उनके गुण-धर्मों से ही उनकी स्थिति नित्य है।

जड़ द्रव्यों में स्वतःसिद्ध क्रिया है। हवा की क्रिया स्वतःसिद्ध है। पानी, मिट्टी, आग की क्रिया स्वतःसिद्ध है। सूक्ष्म जड़ द्रव्यों में जो क्रिया होती है वह उसमें अनादि निहित है। वह सदा से है और सदैव गतिशील है। मिट्टी, पानी, आग और हवा कहें चाहे आक्सीजन, नाइट्रोजन और हाइड्रोजन कहें कोई फरक नहीं पड़ता है। वह सब कहने का मतलब एक ही है। आक्सीजन, नाइट्रोजन और हाइड्रोजन आदि एक सौ से अधिक तत्त्व कहे जाते हैं उन सबको मिट्टी, पानी, आग और हवा इन चारों में ही समाहार किया जा सकता है। जिनको ठोस, तरल, वायव्य और अतिवायव्य भी कहा जाता है। हम लोग उसी को सहज ढंग से कह लेते हैं—मिट्टी, पानी, आग और हवा। चाहे सौ से अधिक तत्त्वों के नाम गिनायें चाहे मिट्टी, पानी, आग और हवा कहें, बात एक ही है। ये सब जड़ द्रव्य हैं, नित्य और अनादि हैं। इनके गुण-धर्म इनमें अनादि निहित हैं। इनसे जगत-प्रपंच भी अनादि है। इसमें कुछ आरम्भ नहीं है, किंतु सदा से है।

लोग प्रश्न करते हैं कि महाराज, पहले बीज है कि वृक्ष। अगर बीज है तो वह बिना वृक्ष के कहां से आ गया। और कहो कि पहले वृक्ष है तो बिना बीज के वृक्ष कहां से आ गया। इसलिए बीज से वृक्ष और वृक्ष से बीज यह क्रम है और यह सब समय है। इसी को दूसरे प्रकार से लोग कह लेते हैं—मुर्गी से अण्डा और अण्डा से मुर्गी। स्त्री-पुरुष के बिना बच्चे नहीं होते। इसलिए जो जगत वर्तमान में है वह सब समय है। इसमें मूड़ मारने की जरूरत नहीं है कि यह कहां से आ गया।

हमारी आवश्यकता एक ऐसे ईश्वर की है जो सब जगह हो, सब कुछ जानता हो और कुछ भी कर सकता हो। वह सर्वत्र व्याप्त, सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान हो। वह सर्वत्र व्याप्त हो इसका मतलब है कि वह हर जगह हो। सर्वशक्तिमान हो अर्थात वह कुछ भी कर सकता हो लेकिन वह अच्छा करता हो बुरा न करता हो और सर्वज्ञ हो अर्थात सब कुछ जानता हो। इन तीन गुणों से सम्पन्न एक शक्ति हमें चाहिए। यह हमारी आवश्यकता है और इसी के लिए पुराकाल से ही मनीषियों ने ईश्वर की सुन्दर कल्पना की है। लेकिन इस आवश्यकता की पूर्ति होती दिखाई नहीं देती है। वह हर जगह है, सब कुछ जानता है और कुछ भी कर सकता है। क्या यह सब व्यवहार में होता है?

इसी दुनिया में हम और आप सब हैं और दुनिया में जो पाप होता है, उसको गिनाने की जरूरत नहीं है। यहां मत्स्य न्याय ही सब जगह चलता है। मत्स्य न्याय का मतलब है बड़ी मछलियां छोटी मछलियों को खा रही हैं। गरीब लोग चूसे जा रहे हैं। जितने कानून बनते हैं, उनमें केवल गरीब ही पिसते हैं। सदैव कमजोर पक्ष ही हर जगह पिसता है। कैसा विचित्र है यह संसार। ईश्वर हर जगह है और सब कुछ को जानता है। ईश्वर इतना बलवान है कि वह चाहे तो सूरज पर कमल खिला दे और चाहे तो कमल पर सूरज उगा दे। ईश्वर से निवेदन करना चाहिए कि वह सूरज पर कमल और कमल पर सूरज न खिलाये केवल इस दुनिया से पाप-ताप को ही दूर कर दे लेकिन इतना भी वह नहीं कर पा रहा है।

हमारी कल्पना तो बड़ी सुन्दर है कि ईश्वर सर्वव्यापक, सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान है। वह सच्चिदानन्द है, त्राता है—दुख को दूर करने वाला है लेकिन यह कल्पना कहीं घटित होती नहीं है, फलित होती नहीं है। तब ईश्वर का क्या स्थान है। और यह जो सत्ता है इस सत्ता को हम कैसे समझें। उपासना का क्या स्थल है। "कस्मै देवाय हविषा विधेम"—यह भी ऋग्वेद के ही मंत्र का अंश है। किस देवता की हम उपासना करें। ईश्वर का क्या मतलब है। परम सत्ता का क्या मतलब है। यह विवेक से विश्लेषण करने का विषय है और खुशी की बात है कि भारतवर्ष पुराकाल से ही चिंतन में गम्भीर रहा है।

बुद्ध के पहले कपिलजी महाराज थे। पक्का थाह नहीं लगता है कि उनका समय क्या है। 'कपिल' नाम ऋग्वेद में आया है और सायणाचार्य ने उस नाम को कपिल मुनि का ही नाम मानकर भाष्य भी किया है। इसका मतलब है कि कपिल भी ऋग्वेद काल के हैं। वेद के अतिरिक्त अन्य शास्त्रों में भी कपिल की गरिमा का वर्णन है और कहा गया है—"सांख्यं विशालं परमं पुराणं महार्णवं विमलमुदारकान्तम्"—सांख्यशास्त्र प्राचीन है, सागर की तरह है और परम पवित्र है। वह ज्ञान का आगार है। और "ज्ञानं च लोके यदिहास्ति किंचित्, सांख्यागतं तच्च महन्महात्मन्!" इसका अर्थ हुआ कि इस संसार में थोड़ा या ज्यादा जो कुछ ज्ञान है, वह सांख्य से आया है।

"ऋषिं प्रसूतं कपिलं यस्तमग्रे"—श्वेताश्वतर उपनिषद् में कहा गया है। कपिल ऋषि प्रथम पैदा हुए। कपिल की ऐसी महिमा ऋषियों ने की और गीताकार ने भी श्रीकृष्ण के मुख से कहलवाया है—"सिद्धानां कपिलो मुनिः"—मैं सिद्धों में कपिल हूं। कपिलवस्तु में ही तथागत बुद्ध का जन्म हुआ था जो बस्ती जिला के उत्तर है और इस समय नेपाल में पड़ता है।

बाबा साहेब अम्बेडकर ने भी यह माना है कि वह कपिल का क्षेत्र है और कपिल की ही परम्परा के ऋषि के प्रभाव से तथागत बुद्ध ने पहले सीखा था। वे महात्मा कपिल ईश्वर के अलग होने को अस्वीकार देते हैं। वे मानते हैं कि ईश्वर अलग नहीं है। प्रकृति और पुरुष दो हैं। कणाद, जैमिनि भी तत्त्व विवेक की बात करते हैं। बुद्ध और महावीर तत्त्व विवेक की बात करते हैं। हमारी भारतीय परम्परा तत्त्व चिंतन में बहुत आगे है। वह भावुक नहीं थी, आगे चलकर वह भावुक बन गयी लेकिन चोटी के ऋषियों को देखा जाये तो वे अत्यन्त चिंतनशील हैं।

जिस ढंग से हम सोचते हैं उस ढंग से ईश्वर नहीं है और यहां ईश्वर का निषेध नहीं है। जैसे हम यहां बैठे हैं और हम यह कहें कि इस कबीराश्रम के दक्षिण की तरफ गंगा बहती है। तो जो यह जानता है कि गंगा तो उत्तर में बहती है वह कहेगा कि आप गलत कहते हैं, गंगा दक्षिण नहीं बहती है। वह उत्तर बहती है। उसका ऐसा कहना गंगा का निषेध नहीं है किंतु दिशा का निषेध है। इसी प्रकार ईश्वर की जो परिभाषा दी गयी है उस परिभाषा का निषेध है, ईश्वर का निषेध नहीं है।

यह जगत चल रहा है। वर्षा होती है। छः ऋतुओं में परिवर्तन होता है। दिन-रात होते हैं। सृष्टि जगर-मगर जगमगाती है। यह संसार निरंतर गतिशील है तो क्या यह बिना किसी कारण के ही चलता है। इन सबमें कारण है। ये सभी प्राणी जीते-खाते हैं, चलते-फिरते हैं। आपका व्यक्तित्व है, आप जीते-खाते हैं। आप में हर्ष है, शोक है, उद्वेग है, कामनाएं हैं, अहंकार है अर्थात "मैं" की एक भावना है कि "मैं" हूं। तो यह सब शून्य तो है नहीं, किंतु अस्तित्ववान है। जो सामने है उन सब में हमें ईश्वर को देखने की जरूरत है लेकिन कल्पना का लड्डू खाकर भटकना नहीं है। भावुक लोग चाहते हैं कि हमें तो ऐसा ईश्वर चाहिए जो बिना कुछ किये हमें सब कुछ दे दे—भोग दे दे, कल्याण कर दे और मोक्ष दे दे।

इसलिए धनियों और शिक्षितों का एक बड़ा तबका ऐसे गुरु बाबाओं के पीछे लगता है जो तत्काल तुरत-फुरत सब काम कर दें। भोग भी दे दें और मोक्ष भी दे दें। यदि लड़का नहीं है तो उनकी कृपा से लड़का भी पैदा हो जाये, रोग भी दूर हो जाये, फैक्टरी लग जाये और मोक्ष हो जाये। वे अगर कृपा कर देंगे तो भगवान के धाम में पहुंच जायेंगे क्योंकि वे सिद्ध बाबा हैं, अवतार हैं, अलौकिक हैं। एक ही साथ में भारत में अनेक जगह में वे भाषण करते हैं। वे चमत्कारी बाबा हैं, आकाशगामी हैं। ऐसे गुरुबाबा लोगों की लाईन में सब लोग लग जाते हैं।

हमें जादूगर जैसा ईश्वर चाहिए जो सब दिखा दे और सस्ते में सब काम कर दे। वस्तुतः हमें सत्ता को तीन भागों में बांटना चाहिए। आधिदैविक, आधिभौतिक और आध्यात्मिक।

आधिदैविक सत्ता जड़ प्रकृति का क्षेत्र है। आधिभौतिक सत्ता प्राणियों का समूह है। आध्यात्मिक सत्ता आपका व्यक्तित्व है। यह कोई अनुमान-कल्पना की बात नहीं है और कोई अटकलपच्चू बात भी नहीं है। यह तो प्रत्यक्षतः सबके सामने है।

वैदिक भाषा के अनुसार प्राकृतिक शक्तियों को देव कहते हैं। सूरज चमकता है यह देव है। चांद चमकता है यह देव है। तारे चमकते हैं ये देव हैं। इसी प्रकार पानी, आग, हवा, पृथ्वी देव हैं। समस्त प्राकृतिक शक्तियां देव हैं। इसीलिए प्राकृतिक आपदा और जड़पदार्थों से जब कष्ट होता है तब लोग कहते हैं कि यह दैवी प्रकोप है। अधिक वर्षा हो गयी और उससे कष्ट हो गया, अवर्षण हो गया उससे कष्ट हुआ, भूचाल से कष्ट हुआ, आग लग गयी उससे कष्ट हुआ तब लोग कहते हैं कि यह दैवी प्रकोप है यानी जड़ प्राकृतिक शक्तियों द्वारा कष्ट की प्राप्ति है। तो जड़ क्षेत्र आधिदैविक क्षेत्र है। अधि कहते हैं आधार को। आधिदैविक का अर्थ हुआ जिसका आधार देव हो अर्थात वह क्षेत्र जिसका आधार जड़-प्रकृति शक्ति है। इस स्थूल जगत का आधार जड़-प्रकृति शक्ति है और इसी को वेद के ऋषि ने कहा—"को ददर्श प्रथमं जायमानं।" इसको पहले उत्पन्न होते किसने देखा। प्रकृति के विषय में हमें विश्लेषण करना चाहिए।

जब पूर्वी हवा चलती है तो पूरब से कोई देवता हवा को ठेलता नहीं है। और जब पश्चिमी हवा चलने

लगती है तो इसका मतलब यह नहीं है कि कोई देवता पश्चिम जाकर हवा को ठेलने लगता है। यह सब प्राकृतिक शक्ति है। नदियां बहती हैं तो उनको कोई देवता ठेल नहीं रहा होता है। समुद्र में तरंगें उठती हैं तो उसमें कोई सचैतन्य देवता कुछ नहीं कर रहा होता है। वह तो प्रकृति-शक्ति है और वही देव कहलाता है। वह स्वयं गतिशील है। द्रव्य और क्रिया अभिन्न हैं। द्रव्य की शक्ति क्रिया है। क्रिया ही से वस्तुशक्ति का प्रकटीकरण होता है। यदि क्रिया न हो तो शक्ति का अनुभव नहीं होगा। द्रव्य में गति है, क्रिया है और वह स्वतः सिद्ध है।

लोग कहते हैं कि जड़ तो जड़ है अर्थात क्रियाहीन है इसलिए उसमें क्रिया कैसे होगी। ऊपर से कोई देवता क्रिया करता है तब क्रिया होती है यानी जब पानी बरसता है तो कोई जानने-बूझनेवाला देवता जान-बूझकर पानी बरसाता है। लेकिन विचार करना चाहिए कि जाननेवाला देवता यदि पानी बरसाये तो खेत में बरसायेगा सड़क पर नहीं बरसायेगा। वह समझ लेगा कि सड़क पर बरसाने से कीचड़ हो जाता है। इसलिए खेत में पानी बरसाना चाहिए। वह खेत में पानी बरसायेगा लेकिन होता क्या है, खेत में जहां पानी की जरूरत होती है वहां पानी नहीं बरसता है और शहरों में इतना पानी बरस जाता है कि पूरा शहर ही पानी में डूब जाता है। सूखा भी पड़ जाता है जिससे सारी फसल जल जाती है।

इसी वर्ष में भारत के अनेक क्षेत्रों में वर्षा की बड़ी जरूरत है लेकिन पानी नहीं बरस रहा है। पानी बरसने का जो कारण है वह जड़ है। उसको ज्ञान नहीं है। उसका वैसा स्वभाव है। स्वभाव से पानी बरसता है। प्रकृति से पानी बरसता है। उसके गुणक्रिया संयुक्त होकर सही ढंग से सम्पादित हो जायेंगे तो बरसेगा, नहीं तो नहीं बरसेगा।

"नाथ सहज इनकी जड़ करनी"—ऐसा गोस्वामी जी ने भी कहलवाया है। ऐ नाथ! पृथ्वी, जल, वायु और अग्नि आदि की सहज जड़ करनी है। जड़ पदार्थों में जो गति होती है, वह उनकी स्वभावसिद्ध क्रिया है। पानी बरस रहा है जिससे बाढ़ आ रही है और नुकसान हो रहा है। तब आप चाहे जितनी प्रार्थना करो कि हे वरुण देवता! क्षमा करो, दूर हो जाओ लेकिन आपकी प्रार्थना से कुछ हल नहीं होगा।

पानी नहीं बरस रहा है तो आप इन्द्र को मनाते रहो कुछ हल नहीं होगा। आग लग गयी और आप गुहार लगाओ कि हे अग्नि देवता! आप शांत हो जाओ। उसमें घी, अक्षत, जौ डालो और "स्वाहा-स्वाहा" करो और प्रार्थना करो कि हे भगवान! अब तो संतुष्ट हो जाओ तो वह संतुष्ट नहीं होगा बल्कि आग और बढ़ जायेगी। उसमें तो पानी और धूल डालने की जरूरत है।

जड़-प्रकृति को हमें ठीक से समझने की जरूरत है लेकिन उसको हम ठीक से समझते नहीं हैं। हम भावना लादकर उसको समझते हैं। देवता कह दिया गया तो मान लिये कि देवता माने सचैतन्य देवता जो कृपा करेगा लेकिन वह भला कौन-सी कृपा करेगा। आग को समझो और आग का उपयोग करो।

सूर्य सबसे बड़ा देवता माना गया है। "एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति"—ऋग्वेद में आया है और वह—"एकम् सद्" आदित्य है। एक आदित्य सूर्य है जो सर्वोच्च देवता है। सूर्य को देवता माना है। उसकी प्रार्थनाएं भी की गयी हैं। सूर्य की प्रार्थना करने की जरूरत नहीं है। ठंडी में सूर्य के ताप का अधिक सेवन, गर्मी में कम सेवन करो और घर ऐसा बनाओ कि जिससे सूर्य का प्रकाश घर में आये, हवा घर में आये। जड़-प्रकृति के गुणधर्मों को समझो और उनका अच्छा उपयोग करो। आधिदैविक ईश्वर, प्रकृति की शक्तियां हैं उनको समझो और समझकर उनका अच्छा उपयोग करो। मिट्टी, पानी, आग, हवा, सूरज, चांद, समुद्र, नदी और हवा इन सबको आप विवेक से समझकर अच्छा उपयोग करो, उनका सेवन करो। यही ईश्वर की उपासना होगी। सूरज की गर्मी का ठंडी में ज्यादा और गर्मी में कम उपयोग करो।

सूरज की प्रार्थना नहीं करना है बल्कि उसको समझना है। उसका प्रकाश लेना है। अपने घर का दरवाजा ऐसा बनाओ, खिड़की ऐसी बनाओ कि उसमें

से सूरज की किरणें कुछ समय आयें और हवाएं आयें। उनका आदर करो तो आपका स्वास्थ्य ठीक रहेगा। सूरज की वन्दना से कुछ काम नहीं बनेगा। बाढ़ आ जाये और आप वन्दना करने लगो तो बह जाओगे। तब तो यही उचित होगा कि जल्दी सामान बांधो और लेकर भागो नहीं तो वन्दना करते-करते बह जाओगे और छुट्टी हो जायेगी।

लोगों को विवेक ज्ञान नहीं है। अंधरूढ़ि में ही सब लोग भटकते हैं। आधिदैविक ईश्वर प्रकृति के नियम हैं। प्रकृति के नियमों को समझें। अंधविश्वास से ऊपर उठें। पानी कोई सचैतन्य देवता नहीं बरसाता। भूचाल कोई सचैतन्य देवता नहीं लाता। कोई सचैतन्य देवता घुमा-घुमाकर दिन-रात नहीं करता है। यह तो प्रकृति के अपने नियमों से निरंतर होता है और इन बातों का भी वर्णन वेदों में बारम्बार आता है। संसार चक्र की तरह चल रहा है। आधिदैविक ईश्वर प्रकृति की शक्तियां हैं और विवेक के द्वारा उसको समझना चाहिए। विज्ञान आजकल बहुत कुछ समझा रहा है।

वाराह मिहिर हमारे यहां के गणितज्ञ थे। उन्होंने आज से डेढ़ हजार वर्ष पूर्व बता दिया था कि चांद, सूर्य और पृथ्वी के एक रेखा में आने से चंद्र या सूर्य का ग्रहण लगता है लेकिन पंडितों और पुरोहितों के खाने के लिए एक व्यवस्था बना दी गयी कि एक राक्षस है और वह सूर्य और चांद को ग्रसता है तब सूर्य तथा चंद्र ग्रहण लगता है। इसलिए दान-पुण्य करना चाहिए। जिससे उससे पाप कट जाये।

काणे जी महाराज जो महाराष्ट्र के बहुत बड़े विद्वान हुए हैं और जिनकी पुस्तक 'धर्मशास्त्र का इतिहास' पांच खण्डों में छपी है, उन्होंने लिखा है कि बुद्धिवाद, परम्परा, अंधविश्वास, एक साथ नहीं चल सकते। बहुत उदार होकर उन्होंने लिखा है कि वाराह मिहिर एक ओर तो बुद्धिवाद की बात करते हैं लेकिन परम्परा के अनुसार पंडितों की पेटपूजा के लिए दान कराने के लिए वे उसमें एक पुछल्ला लगा देते हैं। इस प्रकार वे अंधविश्वास में पड़ जाते हैं। वामन काणे जी स्वयं पंडित थे, विचारवान और महा विद्वान थे लेकिन उन्होंने यह बहुत बढ़िया कहा कि बुद्धिवाद, परम्परा, अंधविश्वास एक साथ नहीं चल सकते।

बुद्धिवाद है तो ठीक है लेकिन परम्परा पर विचार करना होगा। परम्परा की अच्छी बातें लेनी होगी और गलत बातें छोड़नी होगी और अंधविश्वास को तो एकदम छोड़ना होगा। आजकल विज्ञान को पढ़कर आप बहुत कुछ जान सकते हैं और अंधविश्वास से ऊपर उठ सकते हैं लेकिन दिमाग पर इतना अंधविश्वास छाया है कि हद है।

आधिदैविक क्षेत्र प्राकृतिक शक्ति है। आधिदैविक ईश्वर प्राकृतिक शक्ति है। पानी बरसना, न बरसना, छः ऋतुओं का परिवर्तन होना और अनन्त विश्व ब्रह्माण्ड का निरंतर गतिशील रहना यह आधिदैविक ईश्वर से ही होता है। आधिदैविक ईश्वर का मतलब है प्रकृति के नियम जो शाश्वत हैं और अनादि-अनन्त हैं। वेदों में तो यह भी कहा गया है कि प्रकृति के नियम को देव भी नहीं बदल सकते। वेदों में भावुकता की बातें भी बहुत हैं लेकिन बीच-बीच में उसमें विचार-प्रधान बातें मिलेंगी। आधिदैविक ईश्वर प्राकृतिक नियम है। उसकी वन्दना की जरूरत नहीं है। उनको समझने की जरूरत है और उनका सही उपयोग करने की जरूरत है।

दूसरा है आधिभौतिक ईश्वर। भूत का अर्थ होता है प्राणी। ये जो प्राणी हैं ये ही ईश्वर हैं और ये ही पूजनीय हैं, सेवनीय हैं। इनकी सेवा करो। मन, वाणी और कर्मों से किसी का भी अहित न हो। किसी पर भी झूठा दोषारोपण मत करो। किसी की निंदा मत करो। किसी की बुराई मत करो। क्षमा, दया, शील, संतोष से जीवन व्यतीत करो। प्राणिमात्र को ईश्वर समझो, यही आधिभौतिक ईश्वर की सेवा है।

स्वामी विवेकानन्द ने कहा है कि तुम आकाश में ईश्वर खोज रहे हो और उसकी पूजा के लिए उतावले हो। अरे, ये मनुष्य और ये प्राणी जो चारों तरफ फैले हैं यही ईश्वर हैं इनकी पूजा करो, इन्हीं की सेवा करो। स्वामी जी का हृदय तो ऐसा था जैसे गंगा की लहरी। बहुत बढ़िया-बढ़िया बातें वे कह देते थे और तनिक

देर में इतना फटकार भी देते थे कि कोई मुलाहजा नहीं रह जाता था।

आधिभौतिक ईश्वर भूत प्राणी हैं। जड़ तत्त्व, बीता समय, तन्मयता, प्राणी, काल्पनिक भूत-प्रेत, सत्य आदि भूत के अनेक अर्थ होते हैं। गीता के दैवी सम्पदा में आता है—'दया भूतेषु' प्राणियों पर दया करो। कहने का तात्पर्य है कि आधिभौतिक देव, आधिभौतिक ईश्वर प्राणियों का समूह है।

सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्।
स भूमिं विश्वतो वृत्वात्यतिष्ठद्दशांगुलम्॥

यह ऋग्वेद का मंत्र है। इसका अर्थ है उस विराट पुरुष के हजारों हाथ-पैर, सिर-ग्रीवा हैं। वह सब तरफ से घेर कर दस अंगुल के ऊपर बैठा है। यह एक बुझौवल है। वेद के अधिकतम मंत्र तो बुझौवल की तरह होते हैं।

सायणाचार्य वेदों के प्रकाण्ड पंडित हुए हैं उनको हुए सात सौ वर्ष हो गये हैं। उन्होंने इस मंत्र का जो अर्थ किया वह यही है कि प्राणियों का जो समूह है यही विराट पुरुष है। एक-एक व्यक्ति उसके अंग हैं। इसको दार्शनिक भाषा में समष्टि और व्यष्टि कहते हैं। व्यष्टि का अर्थ है अलग-अलग प्राणी और समष्टि का अर्थ है सबकी सामूहिकता। व्यष्टि जीव है और समष्टि ईश्वर। एक-एक व्यक्ति मानो जीव है और सभी व्यक्ति इकट्ठे हो गये तो वही शिव है।

गांवों में कहीं जब कोई विवाद होता है तो उसका फैसला करने के लिए पंच बुलाये जाते हैं वे पंचपरमेश्वर कहलाते हैं। गांववाले कहते हैं कि भाई, पांच आदमी इकट्ठा हो गये तो पंचपरमेश्वर आ गया और अब पंचपरमेश्वर की बात को मानना पड़ेगा। प्राणियों की सामूहिकता को विराट पुरुष कहते हैं। इस विराट पुरुष की सेवा करो। यही सेवनीय है लेकिन दुख यही है कि इसकी सेवा हम नहीं करना चाहते हैं। हम पड़ोसी से ईर्ष्या, द्वेष, क्रोध, घृणा करते हैं। पड़ोसी की बात को तो छोड़ दो, घर में ही लोग इतना कलह करते हैं कि पति-पत्नी जलते हैं, भाई-भाई एक दूसरे से मीठा वचन नहीं बोल पाते हैं। वे नम्र होकर नहीं बोल पाते हैं।

घर में शाम को जब लोग इकट्ठे होते हैं तो तने-तने रहते हैं। एक दूसरे से बोलते नहीं हैं। कोई पूछ लिया तो बाघ-भेड़िया के समान गुर्राकर बोलते हैं और बात-बात में भभक पड़ते हैं। यह भी क्या जीवन है! यह जीवन नहीं बल्कि नरक है। जीवन में जब शीतल मन नहीं है, मीठी वाणी नहीं है, कोमल स्वभाव नहीं है, पत्नी से मीठा वचन नहीं बोल सकते हो, पति से देवियां मीठा वचन नहीं बोल सकती हैं तब तो जीवन में नरक ही है।

एक देवी का फोन आया है। पति से उसका कुछ विवाद है। उस देवी को मैं समझाता रहा कि बेटी अपने पति को सहो। तुम्हारा पति तुमको भले ही कुछ कटु कह दे, तुम उसको कुछ न कहो। लेकिन वह यही कहती रही कि गुरुजी, पति मेरे लिए गलत धारणा रखता है।

मैंने उससे कहा कि तुम यह मत सोचो। जोश में आकर वह तुम्हें कह दिया होगा। वह आदमी होश में नहीं है इसलिए उसे सह लो। गलत धारणा भी लगायेंगे तो उन्हीं का नुकसान होगा। तुम सही धारणा रखो और मीठा बोलो।

उसने कहा कि महाराज, सह नहीं मिलता है। मैंने कहा कि फिर तो दुख भोगना है। कोई उपाय नहीं है। हम सबको सुखी जीवन जीना चाहिए।

मेरे पास जो भी आता है उससे यही पूछता हूं कि भाई, आनन्द है न। तब वह कहता है—हां साहेब, ठीक है। फिर पूछता हूं कि कोई परेशानी तो नहीं है। तब लोग कहते हैं महाराज, परेशानी की मत कहिये। सबको परेशानी बहुत रहती है। चाहे लड़का हो, जवान हो, प्रौढ़ हो या बूढ़ा हो सब की यही दशा है। सब दुखी-सब दुखी हैं और सबको एक ही दुख है—मन की बेचैनी। लोग कहते हैं कि महाराज, पता नहीं क्यों मन बेचैन रहता है। यह समझ नहीं आता है। प्रायः लोग यही कहते हैं कि महाराज, समझ नहीं मिलता है कि मन क्यों बेचैन रहता है।

किसी एक ही की बात थोड़े है। सबकी यही बात है। सबमें असंतोष भरा है। इसका क्या कारण है। कारण है अपने मन का पाप। किसी ने कुछ कह दिया

और आप क्षुब्ध हो गये तो यह आपकी कमजोरी है। यह आप ही का पाप है। हजारों लोग हमें बुरा कहते रहें लेकिन हमें हंसते रहना चाहिए तभी हमारा जीवन सुखी होगा।

सब मिलकर कहें कि तुम महादुष्ट हो तो मैं उनके चरणों में पड़ जाऊं और कह दूं कि भाई, सचमुच मैं दुष्ट हूं। फिर बेचारे सब ठंडे हो जायेंगे लेकिन गद्दीपर बैठकर यह कहना सरल है, व्यवहार में बड़ा कठिन है। लेकिन व्यवहार में ही कहना और करना सार्थक है।

बात है कि दुख अपने मन का पाप है। भूख लगी हो और भोजन न मिले तो दुख है। तन ढकने का वस्त्र न मिले तो दुख है। रहने की छानी न मिले तो दुख है और इतना तो सबको है लेकिन जो पाप है उसको कहां ले जाओगे। वह तो तुम्हें जलायेगा ही। उसको तुम जलाओ तभी सुखी होओगे।

हमारे चारों तरफ जो प्राणी हैं यही परमात्मा हैं। जाति-पांति कुछ नहीं है। जाति-पांति सब झूठ है। मनुष्य मात्र परमात्मा है, प्राणिमात्र परमात्मा है। ये कीड़े-मकोड़े सब परमात्मा हैं। इसलिए जितना बन सके किसी को तकलीफ मत दो।

प्रश्न हो सकता है कि किसान दवाई डालता है जिससे तमाम कीड़े मरते हैं इसलिए उसमें पाप होता है। इसका उत्तर है कि किसान दवाई डालता है तो उसमें उसका उद्देश्य है अन्न की रक्षा, पौधों की रक्षा। वह केवल अन्न की रक्षा चाहता है, कीड़े मारना नहीं चाहता है लेकिन कीड़े मरते हैं तो उसकी मजबूरी है। वह क्या करे। वह बिचारा अन्नोत्पादन में मेहनत करता है इसलिए अन्न की रक्षा तो करनी ही पड़ती है, इसलिए किसान पापी नहीं है। किसान तो विष्णु भगवान है। विष्णु भगवान जगत पालक है ऐसा लोग कहते हैं लेकिन एक बोरा गेहूं कहीं विष्णु भगवान ने भेजा हो ऐसा कहीं सुना नहीं जाता है और किसान लोग इतना अन्न सप्लाई करते हैं कि पूरी दुनिया के लोग खाते और जीते हैं। इसलिए किसान ही विष्णु भगवान है।

तीसरा है आध्यात्मिक ईश्वर। अधि+आत्मिक= आध्यात्मिक। अधि=आधार, आत्मिक=आत्मा। आत्मा जिसका आधार हो वह शरीर, मन और इन्द्रियां आध्यात्मिक शक्ति हैं। शरीर, मन, इन्द्रियां ये आध्यात्मिक हैं क्योंकि आत्मा से ये जुड़े हैं। आध्यात्मिक ईश्वर क्या है—आत्मा है। आत्मा स्वयं ईश्वर है। इसीलिए हमारे ऋषियों ने डंके की चोट पर कहा—"अहं ब्रह्मास्मि।"

याज्ञवल्क्य ने तो यहां तक कहा कि जो कहता है कि देवता अन्य है और मैं अन्य हूं वह देवताओं का पशु है। जैसे एक-एक मनुष्य के कई-कई गायें होती हैं, और कोई गाय उसके हाथ से निकल जाये तो उसको बहुत कष्ट होता है ऐसे बहुत-से मनुष्य मिलकर एक-एक देव की पूजा करते हैं। कोई मनुष्य यदि देव के हाथ से निकल जाये और कहे कि मैं ही ब्रह्म हूं तो वे देवता खुश नहीं होते हैं। इस प्रकार उन्होंने देवताओं का परिहास किया। यह बात बृहदारण्यक उपनिषद् में आयी है। हमारे यहां चिंतन बहुत प्रखर है। पुराकाल से ही एकदम धारदार चिंतन है। परमात्मा, ब्रह्म, आत्मा ये वेदान्त की घोषणा है। जो वेद का अंत भाग है वह वेदान्त है। इसको आप वेद की घोषणा कह सकते हैं।

परि द्यावापृथिवी सद्यऽयित्वा परि लोकान् परि दिशः परि स्वः।
ऋतस्य तन्तुं विततं विचृत्य तदपश्यत्तदभवत्तदासीत॥

यह भी वेदमंत्र है। द्यावा, पृथिवी, अनेक लोक, सब में "परि" विशेषण लगाकर ऋषि समग्रतासूचक अर्थ प्रकट करते हैं कि सबमें ऋत के तंतु परिपूर्ण हैं। प्रकृति के नियम परिपूर्ण हैं लेकिन जो इसको चीर देता है, प्रकृति को जो भेद देता है, वह उसको देख लेता है। वही हो जाता है और वही है ही। इसका सरल अर्थ है कि सारा संसार प्रकृति के नियमों से गुथा है लेकिन इस जड़ प्रकृति से भी ऊपर उठकर जो तत्त्व को समझता है, वह उसको देख लेता है।

"उसको देख लेता है"—इसका मतलब है कि जिसको देखा वह परोक्ष ईश्वर हो गया और वह स्थायी नहीं है। ऋषि कहते हैं कि "तदभवत"—वही हो जाता है लेकिन हो जाना भी नकली है। हो गया तो फिर बदल जायेगा। इसलिए ऋषि कहते हैं "तदासीत" वही वह है ही यानी वह परमात्मा ही है। परोक्ष में नहीं भटकना है। परोक्ष, प्रत्यक्ष और अपरोक्ष

ये तीन विषय हैं। प्रत्यक्ष जड़ जगत है, परोक्ष अलग ईश्वरादि धारणा है और अपरोक्ष आत्मा है। आत्मा ही परमात्मा है। साहेब ने कहा है—

कस्तूरी कुण्डलि बसै, मृग ढूढैं बन माहिं।
तैसे घट-घट राम हैं, दुनिया जानत नाहिं॥

साहेब का जो युग था वह वैष्णवों का युग था और वैष्णवों से वे ज्यादा जुड़े थे। इसलिए उनकी भाषा में परमतत्त्व के लिए "राम" शब्द अधिक है। ब्रह्मवाला समय उनका नहीं था। वह तो उपनिषद् काल और वेद काल था जब ब्रह्म का समय था। कबीर साहेब का काल वैष्णवों का था और वैष्णवों से वे जुड़े थे। इसलिए वे "राम" कहते हैं—"तैसे घट-घट राम हैं, दुनिया जानत नाहिं।" और—"अल्लाह राम जियो तेरि नाईं" उन्होंने अपरोक्ष बोध पर जोर दिया। आध्यात्मिक ईश्वर आपका अपना स्वरूप है और वही उपासनीय है। आधिदैविक ईश्वर विचारणीय है और उपयोग करने की वस्तु है। आधिभौतिक ईश्वर आदरणीय और पूजनीय है। कहने का अर्थ कि आध्यात्मिक ईश्वर ही उपासनीय है और वह आपकी आत्मा है। आधिदैविक ईश्वर प्रकृति की शक्तियां हैं इनको समझना चाहिए। जिससे आप निर्भ्रांत हों। पानी न बरसे तो हवन और कीर्तन के चक्कर में आप न पड़ें। पानी बरसना होगा तब बरसेगा।

आप इस भ्रम में न पड़ें कि पानी ऊपर से कोई देव बरसाता है। जड़ शक्तियों को ठीक से समझें और उनका उपयोग करें। आधिभौतिक ईश्वर अपने इर्द-गिर्द के ये प्राणी हैं। प्राणिमात्र परमात्मा है। इनकी सेवा करें। तकलीफ किसी को न दें और आध्यात्मिक ईश्वर स्वयं आत्मा हैं, अपने को समेटकर स्वयं में लीन हों और वही यहां के ध्यान का विषय है। आध्यात्मिक ईश्वर अर्थात आत्मा ही उपासनीय है। उपनिषद् में भी कहा गया कि लोक में आत्मा ही उपासनीय है। आत्मा का मतलब है स्वयं। तथागत बुद्ध ने भी कहा है—"पटिवासे अत्तिमत्तना" आत्मा के द्वारा आत्मा में निवास करो। गीताकार ने कहा—"आत्मन्येवात्मना तुष्टः"—आत्मा द्वारा आत्मा में संतुष्ट हो। प्रत्यक्ष बोध करो यानी स्वयं का प्रत्यक्ष बोध करो। उसी को अपरोक्ष बोध कहते हैं। भ्रमना कहां है और भटकना कहां है, सब समय ईश्वर मिला है। आंखें खोलो। ये सब प्राणी ईश्वर हैं। सब के साथ कोमल बरताव करो। मीठा बोलो। अत्यन्त विनम्र होकर बोलो। संभालकर बोलो।

एक विद्वान ने लिखा है कि बोलने और लिखने का काम बहुत संभलकर होना चाहिए। आपके लिखने का प्रभाव होता है इसलिए संभालकर लिखो। बोली से आदमी प्रभावित होता है। जैसे आपके मुख से कुछ निकला तो उससे अगला आदमी प्रभावित होता होगा। इसलिए बहुत संभलकर बोलो। बोलने में कटुता न रहे, अकड़बाजी न रहे। अत्यन्त विनम्र और मीठा वचन रहे। कोमल बोलो।

इस प्रकार आधिभौतिक परमात्मा प्राणिजगत है जो हमारे चारों तरफ फैला है। इनकी पूजा अर्थात सत्कार होना चाहिए और अंततः आध्यात्मिक ईश्वर स्वयं आत्मा है। मन को समेटो और आत्मलीन हो जाओ। वही जीवन का परम सुख है।

बीच में मैंने कहा था कि अपने पाप के कारण सब दुखी हैं तो पाप क्या है? राग-द्वेष, मोह-ममता और आसक्ति ही पाप है। इसी पाप के कारण सब दुखी हैं। बहुत लोग स्थूल पाप जैसे चोरी, हत्या और व्यभिचार नहीं करते हैं किंतु मोह करते हैं, वैर करते हैं, ईर्ष्या करते हैं। यह क्या कम पाप है? यही पाप है और यही जलाता रहता है। सब जीव अपने पाप से दुखी हैं। अपने पाप को धो डालो तो पूर्णरूप से सुखी हो जाओगे।

इस प्रकार मैंने आज आपके सामने कहा कि आधिदैविक ईश्वर प्रकृति के नियम हैं जो समझने योग्य हैं और विवेक से उनका उपयोग करने योग्य हैं। आधिभौतिक ईश्वर प्राणिजगत है, जिनका सत्कार हमें करना चाहिए। आध्यात्मिक ईश्वर आत्मा है। अपने मन को समेटकर हमें अपनी आत्मा में लीन होना चाहिए। यही अंतिम ईश्वर उपासना है। इन्हीं शब्दों के साथ मैं अपनी वाणी को विराम देता हूं। ❑